शतक चतुष्टयम्

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

25 जु० 96 को राष्ट्रपति भवन में महामहिम राष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा के करकमलों में सादर भेंट।

डा० श्री रमाकान्त शुक्ल जी को
सादर —

कृष्ण दत्त शर्मा
23/2/96

दिल्ली संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहायोग स प्रकाशित

शैशव के प्रति सहज अनुरक्ति, तारुण्य की उद्दाम चंचलता, वार्धक्य की परवशता एवं ऐन्द्रिय शैथिल्य तथा एक मजदूर की दीनता, विपन्नता, विवशता एवं पारिवारिक दरिद्रताजन्य दुःखों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाली अनुठी रचना

शतकचतुष्टयम्

शैशव-तारुण्य-वार्धक्य-भारवाह

उ० प्र० व दिल्ली संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), एल० टी०, साहित्य रत्न,
सेवा निवृत्त-सह जिला विद्यालय निरीक्षक, उ० प्र०

प्रकाशक :

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

८१, जवाहरगंज, हापुड़ (गाजियाबाद)

दिल्ली संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहायोग स प्रकाशित

शैशव के प्रति सहज अनुरक्ति, तारुण्य की उद्दाम चंचलता, वार्धक्य की परवशता एवं ऐन्द्रिय शैथिल्य तथा एक मजदूर की दीनता, विपन्नता, विवशता एवं पारिवारिक दरिद्रताजन्य दुःखों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाली अनुठी रचना

शतकचतुष्टयम्

शैशव-तारुण्य-वार्धक्य-भारवाह

उ० प्र० व दिल्ली संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री
एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत), एल० टी०, साहित्य रत्न,
सेवा निवृत्त-सह जिला विद्यालय निरीक्षक, उ० प्र०

प्रकाशक :

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

८१, जवाहरगंज, हापुड़ (गाजियाबाद)

लेखक की प्रमुख कृतियाँ

१. भारत दर्शनम् — उ० प्र० संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
२. प्रताप-प्रशस्तिः — उ० प्र० संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
३. कृषाण सैनिकौ
४. शिववीर चरितम् — उ० प्र० संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
५. आत्मारामीयम् — जैन स्थानक सभा दिल्ली से सम्मानित
६. चन्द्रशेखर आजाद (टेलीफिल्म पट कथा) — दिल्ली संस्कृत अकादमी से पुरस्कृत
७. सेनानीः सुभाषः
८. भगवान् परशुरामः (महाकाव्य) — अ० भा० ब्रा० महासभा (पंजी) से पुरस्कृत
९. शतक चतुष्टयम् (शैशव, तारुण्य, वार्धक्य, भारवाह) — दिल्ली संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित
१०. कृषक शतकम् — (प्रकाशनाधीन)
११. सैनिक शतकम् — "
१२. पं० दीनदयाल शतकम् — "
१३. राम राघव संस्तवनम् — "

हिन्दी में

१४. शक्ति और प्रताप खण्ड काव्य
१५. परशुराम चालीसा

© कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

प्रथम संस्करण १९९६
मूल्य : रु० ४० (चालीस रु०)
प्रकाशक : **कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री**
मंत्री—*संस्कृत साहित्य परिषद्*
८१, जवाहर गंज, हापुड़ (गाजियाबाद)

लेजर कम्पोज : **गर्ग कम्प्यूटर्स**, मेरठ।

पुस्तक प्रकाशन में सहयोग
चन्द्र प्रकाश गोयल
चन्द्र प्रकाश एन्ड ब्रादर्स
शिक्षा साहित्य प्रकाशक
कोठी प्यारेलाल, कोठी गेट रोड, हापुड़
मुद्रक : **मोहन आफसैट प्रिंटर्स**, मेरठ।

कवि परिचय

नाम	:	कृष्णदत्त शर्मा
जन्म तिथि	:	१५ जुलाई सन् १९३०
जन्म स्थान	:	ग्राम बछलौता (गाजियाबाद) उ० प्र०
सम्प्रति	:	८१, जवाहर गंज, हापुड़ (गाजियाबाद) उ० प्र०
पिता	:	पं० श्री चिरंजीलाल शर्मा कौशिक गोत्रीय (स्व०)
माता	:	श्रीमती द्रौपदी देवी (स्व०)
गुरुदेव	:	पं० श्री बालकराम जी गौड़ पुराणेतिहासाचार्य
शिक्षा	:	व्या० मध्यमा—श्री चण्डी संस्कृत विद्यालय, हापुड़ साहि० शास्त्री—श्री राधा कृष्ण संस्कृत महा विद्या० खुर्जा एम० ए० (हिन्दी संस्कृत) आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, एल० टी० साहित्य रत्न, हिन्दी कोविद
व्यवसाय	:	अध्यापन-मान्यता प्राप्त विद्यालय। सह अध्यापक व प्रवक्ता-राजकीय दीक्षा विद्यालय, जू० बे० टेनिंग कालिज, राजकीय इण्टर कालिज प्राचार्य—राजकीय इण्टर कालिज।
सह सचिव	:	माध्यमिक शिक्षा परिषद् उ० प्र०
सेवा निवृत्ति	:	सह जिला विद्यालय निरीक्षक (मेरठ) के पद से सन् १९८८
क्षेत्र	:	काव्य साधना, संस्कृत-संस्कृति सेवा, सामाजिक कार्य। मंत्री-संस्कृत साहित्य परिषद् हापुड़
प्रकाशन	:	व्रजगरिमा, व्रजगन्धा, संस्कृतामृतम्, भारतोदयः, सूर्योदयः, संस्कृतमंजरी, विश्वं संस्कृतम्, गुञ्जारवः, पारिजातम् आदि पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं।
सम्मान	:	उ० प्र० संस्कृत अकादमी, दिल्ली संस्कृत अकादमी स्थानीय—काव्य गंगा, संस्कार भारती, संस्कृत साहित्य परिषद अ० भा० ब्रा० महासभा
सम्पर्क	:	८१, जवाहर गंज, हापुड़—२४५१०१ (गाजियाबाद) उ० प्र०

निवेदम्

सुकाव्य रसानुभूति मर्मज्ञ ! विज्ञ सुधीवर !

प्रस्तुत काव्य 'शतक चतुष्टयम्' (शैशवशतकम्, तारुण्य शतकम्, वार्धक्य शतकम् एवं भारवाह शतकम्) एक ऐसी रचना है जिसमें आत्मानुभूति एवं कल्पना प्रसूत भाव प्रस्तुत किए गए हैं। यह न तो कोरी कल्पना ही है और न ही पूर्णतः स्वात्मानुभूति। जो कुछ देखा है, सहा है, सुना है और चखा है, वही इस रचना में ग्रथित है।

विगत बचपन की सुखद स्मृतियाँ, यौवन की सहत्र महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किए गए खट्टे, मीठे, कड़ुवे, चरपरे अनुभव भरे प्रयास, वृद्धावस्था के कल्पनातीत मधुर, कटु एवं तीखे, हर्ष-विषाद भरे अनुभव, एक भारवाह (मजदूर) का संघर्ष भरा जीवन, यही, सब इस रचना में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

भाषा को आडम्बर व दुरूहता से दूर रखते हुए मेरा यही प्रयास रहा है कि सरलतम शब्दों का ही प्रयोग हो। काव्य में कुछ सार है अथवा नहीं इस का निर्णय तो नीर-क्षीर विवेकी, सुधी जन ही कर सकते हैं, यतः—

'कविः करोति काव्यानि, स्वादु जानन्ति कोविदाः ?'

इस काव्य के सृजन में जिन हितैषी बन्धुओं व गुरुजनों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग मिला है उनके प्रति साभार नतमस्तक हूँ विशेषतः पूज्यवर गुरु जी बालक राम जी गौड, आचार्य श्री वैजनाथ जी स्वामी, स्वतंत्रता सेनानी श्री अमोलक चन्द्र जी मित्तल तथा पं० श्री रमाकान्त जी शर्मा का आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद ने सदैव प्रेरित किया है। श्रीमती सरोज 'राधा शर्मा' व कामेश्वर दत्त शर्मा को साधुवाद है जिनके सहयोग, धैर्य एवं सहिष्णुता के फलस्वरूप यह काव्य प्रकाशित होने की स्थिति में आ पाया है।

श्रद्धेय प्रवर, उदारमना, विद्वद्वरेण्य श्री कलानाथ जी शास्त्री (राजस्थान), आचार्य श्री केशवराम जी शर्मा (सोलन), डा० श्री हरे कृष्ण मेहेर (ओडीसा), डा० श्री अमिय चन्द शास्त्री 'सुधेन्दु' (कोसी कलाँ उ० प्र०), डा० श्री उदयनाथ 'झा', डा० सुद्युम्न आचार्य के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इन शतकों की भूमिका आशंसनम् लिखकर मेरा मनोबल बढ़ाया है। सभी सारस्वत, सुधीजनों का साधुवाद करते हुए आशा करता हूँ कि भविष्य में भी मेरा मार्ग दर्शन करने की कृपा करते रहेंगे।

दिल्ली संस्कृत आकादमी के सचिव कवि रत्न श्री श्रीकृष्ण सेमबाल जी के प्रति साभार कृतज्ञता ज्ञापन करने में मैं गौरव अनुभव कर रहा हूँ कि इस काव्य ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ दिल्ली संस्कृत अकादमी से आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने में उन्होंने अपनी विज्ञता, सौजन्य एवं उदारता का परिचय दिया है।

ससाधुवाद

८१, जवाहर गंज,
हापुड़- २४५१०१

विद्वद्वशंवदः
कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

शतकचतुष्टयम्

अश्ववसुग्रहेशाब्दे वैक्रमे यस्य जन्मना ।
श्री चिरञ्जीवलालस्य गृहमभूदलङ्कृतम् ॥१ ॥

ग्रामस्तु वत्सलोता स मयराष्ट्रजनपदे ।
खाऽग्निनिधीशक्रै स्ताब्दे जन्मना गौरवान्वितः ॥२ ॥

शैशवशतकं येन भुजङ्गप्रयाते कृतम् ।
भारवाहशतकञ्च बसन्ततिलकायितम् ॥३ ॥

तारुण्यशतकं यस्य वार्धक्यशतकं तथा ।
उपजात्यां प्रणीते द्वे श्री कृष्णदत्तशर्मणा ॥४ ॥

मधुरशब्दसंयुक्तमलंकारैरलङ्कृतम् ।
शोभितं कोमलैर्भावैः सुन्दरंभावनायुतम् ॥५ ॥

सुललितपदैर्युक्तं यच्छतकचतुष्टयम् ।
एतच्चतुःशतकानां संग्रहस्तत्प्रकाश्यते ॥६ ॥

संस्कृत विभागाध्यक्षः
म० मा० डिग्री कालेज
खेखड़ा—२०११०१ (मेरठ)
दि० : १-६-९६

रचयिता
डा० रामकिशोर मिश्रः

अनुक्रमणिका

शतकचतुष्टयम्

अध्याय		पृष्ठ संख्या
१.	शैशव शतकम्	१—२८
	भूमिका	
	शतकम्	
२.	तारुण्य शतकम्	२९—६०
	भूमिका	
	शतकम्	
३.	वार्धक्य शतकम्	६१—८८
	भूमिका	
	शतकम्	
४.	भारवाह शतकम्	८९—१२०
	भूमिका	
	शतकम्	

प्राक्कथन

मैंने पं० कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री विरचित शैशव शतकम् का आद्योपान्त अध्ययन किया। संस्कृत में शतकों की सुदीर्घ परम्परा रही है। उसका अनुसरण करते हुए यहाँ शैशव जीवन का मनोहारी वर्णन किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में शैशव की अमिट छाप होती है। इसका समूचा जीवन वैसा ही विकसित होता है, जैसा शैशव काल में निर्मित होता है। इस समय माता-पिता का अनूठा प्रेम मिलता है, जो सर्वथा अनुपम एवम् अतुलनीय होता है। इसीलिए अनेक आचार्यों ने 'वात्सल्य' को सर्वथा अलग दसवें रस के रूप में स्वीकार किया है।

यों तो श्रीराम तथा श्रीकृष्ण को आधार बनाकर संस्कृत हिन्दी काव्यों में शैशव का प्रभूत वर्णन हुआ है। पर यहाँ **श्री शास्त्री जी** ने अपनी ही स्मृतियों को आधार बना कर शैशव का अतिसुन्दर काव्यात्मक वर्णन किया है। वास्तव में श्री शास्त्री जी का लिखा वर्णन प्रत्येक के साथ बीती घटनाओं के क्षण हैं। इसलिए प्रत्येक पाठक इसे अपने ही बचपन की बीती घटना मानकर पढ़ते हुए आनन्द प्राप्त करता है।

काव्य के अन्त में श्री शास्त्री ने समाज के सभी लोगों को यह सुहृत्सम्मित उपदेश दिया है कि कोई भी किसी के बचपन को दुखी न बनाए। देश के भविष्य की आशाओं पर आघात वस्तुतः अपना ही आघात करना है। अतः श्री शर्मा जी का यह अतिसुन्दर काव्यात्मक उपदेश सर्वथा सामयिक है तथा सबके द्वारा शिरोधार्य करने योग्य है।

मै अतिरमणीय प्राञ्जल भाषा में अतिसुन्दर सहृदय हृदय संवादी काव्य के लिए श्री शर्मा जी को बधाई देता हूँ। सचमुच उनका यह काव्य अर्थ के साथ यश प्रदान करने वाला भी है तथा शिवेतर की क्षति के लिय भी है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि श्री शर्मा के लिए ये प्रयोजन सदा सिद्ध होते रहें।

डा० सुद्युम्न आचार्य
व्याकरणाचार्य, एम० ए० (अष्ट सुवर्ण पदक विजेता) डी० फिल
रीडर—स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
मु० म० टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बलिया (उ० प्र०)

दि० १८-५-९६

प्रथमम्

शैशव शतकम्

कृष्ण दत्तः शर्मा शास्त्री

'शुभाशंसा'

अमरवाणी संस्कृत में आज भी शतशः कवि विभिन्न शैलियों में विभिन्न भाव भूमियों की गद्य-पद्य रचना कर रहे हैं, यह इस गीर्वाणवाणी की चिरन्तनता का ही नहीं, चिर यौवन का भी प्रमाण है। ऐसे ही कवियों में हापुड़ के **श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री** का नाम भी आता है जो अपनी काव्य रचना से अमर भारती के भाण्डागार को समृद्ध कर रहे हैं। यह हर्ष की बात है कि श्री शास्त्री जी की नवीन कृति 'शैशव शतकम्' उनके सर्जन क्रम की एक कड़ी के रूप में प्रकाशित होने जा रही है।

बचपन की मधुर स्मृतियों और शैशव के निश्छल परिवेश की भाव भीनी हूक को अभिव्यक्ति देते हुए भुजंग प्रयात छन्द में इन्होंने जो काव्य रचना की है उसमें सरलता है, सहजता है, प्रसाद गुण है और वीते दिनों की भाव भूमि का अंकन है। भारत के परम्परानुयायी परिवारों में बालकों के मुण्डन आदि संस्कार किस सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होते हैं, बालक का क्या स्वरूप था—यह भी इसमें चित्रित है। कवि सुदूर अतीत के रूप में शैशव को याद करता है जो चला गया है, अब कभी नहीं आएगा, इस दृष्टि कोण से शायद इसमें प्रायः सर्वत्र परोक्ष भूत का प्रयोग है।

इस प्रकार के नूतन भावबोध की सरल संस्कृत कविता इस बात को प्रमाणित करती है कि आज का संस्कृत कवि सभी विधाओं और सभी भाव भूमियों में उतर कर संस्कृत में सजीव सर्जन कर रहा है।

आशा है **पं० कृष्ण दत्त शर्मा शास्त्री** की यह नूतन काव्य कृति सहृदय काव्य-प्रेमियों का स्नेह और सम्मान प्राप्त करेगी तथा आधुनिक संस्कृत कविता की समृद्धि में समुचित योगदान करेगी। इस नूतन रचना के लिए श्री शास्त्री जी को अनेक बधाइयाँ।

होलिकोत्सव, फाल्गुन पूर्णिमा
सम्वत् २०५२
५ मार्च, १९९६

कलानाथ शास्त्री
अध्यक्ष
राजस्थान संस्कृत अकादमी
श्री वीरेश्वर भवन, गणगौरी बाजार
जयपुर—३

शैशव शतकम्

यशोदाप्रियं कृष्णचन्द्रं सुबालम्,
मुकुन्दं सुदोलाधिरूढं प्रफुल्लम्।
कराग्रेण पादाग्रभागं गृहीत्वा
मुखे स्वे पिबन्तं नमामो वयं तम् ॥१॥

पालने में लेटे हुए, प्रसन्न मुखवाले, अपने हाथ के अग्र भाग से पैर का अंगूठा पकड़कर, अपने मुख में रखकर पीते हुए, यशोदा माता के प्रिय पुत्र, बालस्वरूप, मुकुन्द, कृष्णचन्द्र को हम सभी प्रणाम करते हैं।

यथोदेत्य भानुः प्रभाते प्रकृत्याः,
स्वरूपं विधत्ते मनोज्ञं सुरम्यम्।
तथा पुत्रलाभो जगत्यां जनानाम,
विधत्ते मनांसि प्रसन्नानि नित्यम् ॥२॥

जिस प्रकार सूर्य प्रभात काल में उदय होकर प्रकृति के स्वरूप को सुरम्य और मनोरम बना देता है, उसी प्रकार पुत्र का जन्म भी इस संसार में, मनुष्यों के मनों को सदा ही प्रसन्न बनाया करता है।

यथा निर्झरो जन्मकाले स्वकीये,
प्रकामं विशुद्धो भवत्येव हैमः।
विपंकः सदा शोभते निर्मलोऽसौ,
तथैवाऽत्र लोकेऽपि वालो विशुद्धः ॥३॥

जिस प्रकार पिघले हुए बर्फ से बना झरना अपने जन्म के समय पूर्णरूप से विशुद्ध होता है और बिना पंक वाला, साफ स्वच्छ बना बहुत ही सुन्दर लगता है, उसी प्रकार इस संसार में बालक भी सभी प्रकार से, छल कपट रहित, पवित्र हृदय वाला, बड़ा ही अच्छा लगता है।

विहाय स्व जन्मस्थलं निझरो वै,
यथैति प्रवाहं प्रकर्षेण गाढम्।
तथाग्रे सरन्दोषजातं ह्युपैति,
प्रदोषानुपैत्यत्र वालस्तथैव ॥४॥

जिस प्रकार साफ-स्वच्छ, निर्मल झरना, अपने उद्गम स्थान को छोड़कर धीरे-धीरे तेज और गाढ़े प्रवाह को धारण करता है और आगे बढ़ता हुआ अनेक प्रकार की गन्दगियों को अपने में समेटता हुआ चलता है, उसी प्रकार एक बालक भी अपने बचपन को छोड़ कर जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है वैसे ही वैसे अनेक अवगुणों को ग्रहण करने लगता है।

विशुद्धं पवित्रं यथा निर्मलञ्च,
भवत्यत्र गाङ्गं प्रसिद्धं जगत्याम् ।
तथैवात्र बालोऽपि सद्यः प्रजातो
विभात्येव शुद्धो यथा दर्पणो वै ॥५ ॥

जिस प्रकार इस संसार में गंगाजल, विशुद्ध, पवित्र और निर्मल होता है उसी प्रकार नवजात बालक भी, स्वच्छ निर्मल दर्पण की तरह दोष रहित, पूर्णरूप से विशुद्ध और पवित्र हृदय होता है ।

विशुद्धोऽपि बालस्तु सामाजिकाना-
मवाप्यानुकूल्यं स्व शुद्धिञ्जहाति ।
प्रदोषैरनेकैश्च बालस्य तस्य,
स्वभावः प्रलिप्तो भवेन्नात्र शंका ॥६ ॥

सभी तरह से पवित्र हृदय बालक भी, समाज में रहने वाले व्यक्तियों का सम्पर्क पाकर अपनी पवित्रता को त्याग देता है और शनैः शनैः उस बालक का निर्मल स्वभाव भी अनेक प्रकार के दोषों से प्रभावित होता जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

क्वचिच्छैशवं नग्नरूपं विपन्नङ्-
क्वचिच्छीतवर्षातपैः सुप्रतप्तम् ।
सुखाद्यं विनैव क्वचित्खिद्यमानम्,
जनै र्दृश्यते सर्वलोकेषु नित्यम् ॥७ ॥

सारे संसार में, सभी मनुष्यों के द्वारा नित्य ही देखा जा रहा है कि छोटे-छोटे बालक कहीं नंगे और निर्धन है, कहीं पर जाड़े, गर्मी और वर्षा के कारण सताए हुए हैं, और कहीं पर बिना भोजन के ही तरह-तरह से दुःखी होते हुए जीवन विता रहे हैं ।

क्वचिच्छैशवं दृश्यते मातृ-पृष्ठे,
सुजीर्णे विशीर्णे कुचैले निबद्धम् ।
पिबन्वै जनन्याः स्तनं दुग्धहीनम्,
विजानाति चैन्द्रं सुखं सर्वकालम् ॥८ ॥

कहीं पर छोटे-छोटे शिशु, फटे, पुराने और गन्दे चीथड़ों में लिपटे अपनी माताओं की पीठ पर बँधे दिखाई देते हैं । कहीं पर वही सुकोमल बचपन अपनी माता के दूधविहीन स्तन का पान करते हुए झूठे दुग्धपान में ही इन्द्रलोक के सुख का अनुभव करता है ।

क्वचिच्छैशवं नैव जानाति लोके,
भवेत्किञ्च दुःखञ्च कष्टं भवेत्किम्।
तथा तत्सुदोलाधिरूढं शयानम्,
न जानाति किं नाम भीति र्भवस्य ॥९॥

इसके विपरीत इस संसार में कहीं पर बचपन यह जान ही नहीं पाता कि दुःख क्या होता है और कष्ट किसे कहते हैं। पालने में सुख पूर्वक आराम से लेटा हुआ वह यह समझ ही नहीं पाता कि संसार का दुःख कैसा होता है।

क्वचित्तच्छिशुत्वं स्व पित्रो र्ममत्वम्,
विनैवात्र लोके प्रयाति प्रवृद्धिम्।
तथा सेवकानामधीनं निरीहम्,
यथा वर्धते तत्तथा वर्धते तत् ॥१०॥

कहीं पर तो यह बचपन अपने माता-पिता के स्नेह के बिना ही धीरे-धीरे बढ़ता रहता है। तथा सेवकों की दया पर पलता हुआ वह निरीह बचपन जैसे-जैसे आगे बढ़ता है।

सुतं का सुमाता प्रसूयात्र साध्वी,
सुधन्या भवेच्चैव सौभाग्यशीला।
सुधन्यात्र सत्यं सुमाता तदैव,
यदा सा सुतं सत्यशीलं प्रसूते ॥११॥

इस संसार में कौन सी सती साध्वी माता पुत्र को जन्म देकर धन्य और सौभाग्य शालिनी होती? वास्तव में कोई भी माता धन्य तभी होती है, जब वह किसी सत्यपरायण पुत्र को जन्म देती है।

अहो! मे गतं शैशवं तत्सुरम्यम्,
पुनर्नागतं तद्गतं सर्वथा यत्।
अहं कामये कामयध्वं च यूयम्,
न कश्चित्पुनस्तत्त्ववापेह जीवः ॥१२॥

खेद है कि मेरा बड़ा ही सुन्दर बचपन कहाँ चला गया? वह बचपन लौटकर फिर कभी वापस नहीं आया जो एक बार चला गया तो चला ही गया, उस बीते बचपन को मैं भी चाहता हूँ और तुम सब भी उसकी कामना करते हो परन्तु बीते बचपन को किसी भी जीव ने फिर दोबारा प्राप्त नहीं किया।

मदीयं शिशुत्वं सुरम्यं तथाऽऽसीद,
यथा नैव रम्यं कदाचित्सुरत्वम्।
अवाप्येश्वरत्वं सुरेन्द्रोऽपि भीतः,
परम्मे शिशुत्वे न भीतिः कदाचित् ॥१३॥

मेरा बचपन इतना सुन्दर और सुखद था कि उसके आगे देवत्व भी उतना सुन्दर नहीं था। देवों का राजा इन्द्र भी इन्द्रपद प्राप्त करके सदा डरता ही रहता है परन्तु मेरे बचपन में कहीं भी और कमी भी कोई भय ही नहीं था।

न कालुष्यमासीन्न पापं तदाऽऽसीन्
न जाति, र्न वर्णो न धर्मो हि कश्चित्।
पवित्रे सुरम्ये च तद्बालरूपे,
वयं सर्वथैवैकरुपास्तदा ऽऽ स्मः ॥१४॥

उस बचपन में किसी भी प्रकार कोई पाप दोष नहीं था। उस भोले-भाले बचपन में न कोई जाति थी, न कोई वर्ण था और न ही कोई धर्म था। उस सुन्दर, पवित्र बचपन में हम सब सभी तरह से एक रूप ही थे।

यथा गीयते ब्रह्मरूपं सुविज्ञैः
सदा निर्विकारं विशुद्धं पवित्रम्।
तथैवात्र लोके रजोभिस्तमोभि
र्विकारै र्विहीनं ममासीच्छिशुत्वम् ॥१५॥

विद्वान, ब्रह्मज्ञानी मनुष्यों के द्वारा जिस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप सदैव निर्विकार विशुद्ध और पवित्र बताया जाता है उसी प्रकार इस लोक में रजोगुण, तमोगुण तथा अन्य सभी विकारों से रहित मेरा बचपन था।

न तत्रास्ति मित्रं न शत्रुर्हि कश्चिन्
न पापं न शोको न कालुष्यमेव।
न चेर्ष्याविषादौ न रागो घृणा वा,
भवत्यत्र चैकं प्रमोदस्य राज्यम् ॥१६॥

बचपन में न कोई मित्र होता है न कोई शत्रु, न कोई पाप होता है, न शोक होता है, न कोई कलुषता होती है, न कोई ईर्ष्या होती है, न कोई विषाद, न राग होता है और न ही किसी के प्रति घृणा भाव, इसमें तो एकमात्र प्रसन्नता का ही राज्य रहता है।

विचित्रैः सुवर्णैः सुपुष्पैः सुहृद्यै
र्लतोत्थैः प्रसूनैः सुकुञ्जैः सुगुल्मैः ।
अलीनाम्मदान्धैः समूहै र्भ्रमद्भिः,
सुवृक्षस्थितानां खगानां विरावैः ॥१७॥
यथोद्यानभूमिः सदा शोभमाना
जनानां मनस्त्वत्र मोदं विभर्ति ।
तथा शैशवं सर्वथा पापहीनं
भवत्यत्र मोदप्रदं बान्धवानाम् ॥१८॥

हृदय को आनन्दित करने वाले, रंग-विरंगे, अद्भुत सुन्दर फूलों से, लताओं पर खिलने वाले विविध फूलों से, मनोहर कुञ्जों एवं सुन्दर गुल्मों से, भौंरो के घूमते हुए मदान्ध समूहों से तथा सुन्दर हरे भरे वृक्षों पर बैठे पक्षियों के सुन्दर मनोहर कलरव से जिस प्रकार सदा सुशोभित उपवन की भूमि मनोहर होती है और मनुष्यों के मन को आनन्द से भर देती है उसी प्रकार सभी प्रकार के पाप दोषों से सर्वथा दूर शैशव अपने बन्धु बान्धवों को आनन्द प्रदान करता है ।

यदा जन्म जातं धरण्यां मदीयन्
तदा मे गृहं हर्षपूर्णं बभूव ।
पितुर्जन्मदात्री तथा जन्मदाता
प्रसन्नावभूतां प्रकामं हि तौ द्वौ ॥१९॥

एक शिशु कहता है कि इस पृथ्वी पर जब मेरा जन्म हुआ तो उस समय मेरा घर खुशियों से भर गया । मेरे पिता को जन्म देने वाले मेरी दादी व दादा, दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न हो उठे ।

न वैयक्तिकं जीवनं मे तदाऽऽसीत्
तदाऽऽसं विशुद्धः पवित्रस्त्वखण्डः ।
रजश्चापि नासीत्तमश्चापि नासीत्,
तदाऽऽसीत्तु सर्वत्र सन्मात्रमेव ॥२०॥

उस समय मेरा किसी प्रकार का कोई व्यक्तिगत जीवन नहीं था । उस समय तो मैं विशुद्ध, पवित्र और सम्पूर्ण रूप से एक था । मेरे में न कोई रजोगुण था न तमो गुण ही, उस समय तो केवल सबतरफ एक मात्र सत् ही सत् था ।

प्रपीडामसह्यां हि सोढ्वापि माता,
सुतं मां प्रसूयाऽत्र धन्या बभूव।
स्व पार्श्वे तनूजं शयानं विलोक्य,
जनन्याः प्रमोदो न मेने स्व मर्याम् ॥२१ ॥

असह्य प्रसव पीड़ा को सहकर भी मेरी माता मुझ जैसे पुत्र को जन्म दे कर धन्य हो गई। आपनी बगल में अपने पुत्र को सोता देखकर तो मेरी माता की प्रसन्नता की कोई सीमा ही नहीं रही।

कराग्रेण संस्पृश्य गात्रं मदीयम्,
प्रणौति स्म देवाँस्तु मज्जन्मदात्री।
अशेषाणि कष्टानि विस्मृत्य शीघ्रम्,
पुनःसा तथा भूत्प्रसन्ना यथाऽऽसीत् ॥२२ ॥

पास में लेटे हुए, मेरे शरीर को अपने कोमल हाथ से छूकर मेरी माता ने देवताओं को प्रणाम किया और प्रसव काल के सभी कष्टों को भुलाकर वह फिर वैसी ही प्रसन्न हो गई जैसी पहले थी।

धरण्यां समागत्य वालो रुरोद,
परन्त्वत्र सर्वे गृहस्था मनुष्याः।
समाकर्ण्य मे रोदनं तत्प्रकृष्टम,
प्रमोदेन हर्षेण मत्ता अभूवन् ॥२३ ॥

जैसे ही बालक इस धरती पर आकर रोया तो घर में उपस्थित सभी नर-नारी मुझ बालक का रोदन सुनकर आनन्द और हर्ष से मस्त हो गए।

युवत्यो युवानो हिताकांक्षिणश्च,
गृहस्थाः सुवृद्धा वयस्याः सुभृत्याः।
सुसन्तानलाभेन दिष्ट्या त्वमत्र,
प्रवर्धस्व लोकेऽ ब्रुवन् जन्मदं मे ॥२४ ॥

मेरे जन्म के समय घर में उपस्थित युवती, युवक और हितचाहने वाले बूढे व्यक्ति, बूढी स्त्रियाँ, मित्र साथी और सेवक सभी ने मेरे पिता से इस प्रकार कहा—'बधाई है, कि तुम्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है।' तुम्हें एक बेटा मिला है।

असौ जन्मदाऽऽलोक्य देहं मदीयङ्,
कराग्रेण संस्पृश्य रोमांचिताऽभूत्।
समालभ्य मातुः करस्पर्शमात्रम्,
प्रशान्तश्च तत्याज तद्रोदनं वै ॥२५॥

मेरी माता मेरे कोमल शरीर को देखकर और अपने हाथ के अग्रभाग से स्पर्श करके रोमांचित हो उठी और मैं अपनी माता की कोमल हथेली का स्पर्श पाकर शान्त हो गया और मैंने रोना बन्द कर दिया।

न तद् वैभवं रोचते पुत्रकाय,
विडौजागृहे यत्सुखेनैव लभ्यम्।
ऋते मातुरंकान्न किञ्चिज्जगत्याम्,
सुखंचाऽभयं पुत्रकाय प्रदद्यात् ॥२६॥

किसी भी बालक को वह वैभव व ऐश्वर्ध कमी भी अच्छा नहीं लगता जो सुरेन्द्र के घर में आसानी से प्राप्त हो सकता हैं। पुत्र के लिए माता की गोदी के अलावा इस संसार में कोई दूसरी वस्तु ही नहीं जो उसे सुख और आराम प्रदान कर सके।

अनूढा नवोढा युवत्यस्तरुण्यः
प्रवृद्धा अवृद्धाः सुवाला रमण्यः।
समागत्य रात्रीषु नित्यं गृहं मे,
मिलित्वा जगुर्गीतकानि प्रकामम् ॥२७॥

अविवाहिता, नवविवाहिता, युवतियाँ, तरुण बालाएँ, बहुत अधिक बूढी और अध बूढी स्त्रियाँ, बालिकाएँ एवं रमणियाँ, रात के समय हमारे घर आकर और मिल जुल कर मन भर कर अनेक प्रकार के गीत गाती थीं।

सुहृष्टां प्रसूतां समालक्ष्य नार्यः
प्रहासोपहासानुरक्ता निकामम्।
अधिक्षेपवाक्यानि गायन्ति मुग्धा,
न किङ्किञ्जगुस्ता, न शक्नोमि वक्तुम् ॥२८॥

हँसी मजाक में रस लेने वाली वे स्त्रियाँ, पुत्र को जन्म देने वाली प्रसन्नता का अनुभव करने वाली मेरी माता को लक्ष्य करके गालियाँ गाती थीं और प्रसन्न होती थीं। वे भोली-भाली स्त्रियाँ क्या-क्या गाती थीं, यह मैं कह भी नहीं सकता।

जनन्याः कराग्रेण संस्पृष्टगात्रः,
पवित्रं पयो मातृदेव्याः पिबन् वै।
सुरेन्द्राधिपस्यापि सौख्यं विशालम्,
स्व चित्ते दघौ सत्वहीनं सदाऽहम् ॥२९ ॥

माता के कोमल कराग्र भाग से स्पर्श किए हुए अंगों वाले, पूज्य माता का पवित्र दुग्ध पान करते हुए मैं ने देवताओं के राजा इन्द्र के विशाल सुख को भी अपने चित्त में तुच्छ समझा।

क्रमेणेह पीत्वा पयो मातृ-देव्याः
सुहृष्टः सुपुष्टोऽभवं स्वस्थगात्रः।
कदाचित्स्व मात्रंकहीनोऽभवञ्चेन्,
न मद्रोदनं तर्हि शान्तं बभूव ॥३० ॥

मैं अपनी पूज्य माता का दुग्धपान करके क्रमशः हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ गात्र वाला हो गया। यदि कभी मैं अपनी माता की गोद से अलग हो जाता तो मेरा रोदन शान्त नहीं होता था।

पुनः प्राप्य मात्रंकसौख्यं निकामम्,
निपीयैव तस्याःस्तनक्षीरसारम्।
सुतुष्टोऽभवं मौनशीलस्तदाहम्,
न जाने कुतो मे गतं रोदनं तत् ॥३१ ॥

अपनी माता की गोदी के प्रिय सुख को पुनः प्राप्त करके और उस के स्तनों से निकलते दूध का पान करके मैं सन्तुष्ट हुआ शान्त हो जाता था। उस समय मेरा रोदन न जाने कहाँ चला जाता था।

न कस्याः कुदृष्टिः सुतं दूष्येद् वै,
सुकण्ठे मदीयेऽर्पयामास सूत्रम्।
सुदोलाधिरूढं विधायैव माता,
सुवस्त्राञ्चलेनैव मां प्रावृणोत् सा ॥३२ ॥

किसी की कुदृष्टि पुत्रको न लग जाय, इसलिए मेरी माता ने मेरे कण्ठ में एक सूत्र (कण्ला) पहना दिया और मुझे पालने में लिटा कर उसने एक अच्छे कपड़े से मुझे ढक दिया।

न चिन्ता तदाऽऽसीद् भयं नैव कस्मान्
न कस्मिन् विरागो न कस्मिन् सुरागः।
न चेर्ष्यैव कस्मै न विद्वेषभावस्
तदाऽऽसं विशुद्धः सुगांगेन तुल्यः ॥३३ ॥

उस समय न तो कोई चिन्ता थी और न ही किसी से भय। न किसी का विराग था और न किसी से लगाव ही। किसी से ईर्ष्या भी अपनी नहीं थी, और न किसी से द्वेषभाव ही था। उस समय तो मैं गंगाजल के समान पूर्णरूप से विशुद्ध था। मेरे में किसी प्रकार का कोई पाप था ही नहीं।

मयाऽऽर्द्रीकृतेष्वेव वस्त्रेषु रात्रा
वशेत स्वयं मां ददौ शुष्कवस्त्रम्।
अनेकानि दुःखानि सोढ्वाऽपि मात्रा
सुतः सर्वथा रक्ष्यते नात्र शंका ॥३४ ॥

मेरी माता मेरे द्वारा गीले किए हुए वस्त्रों में, रात्रि के समय, स्वयं सोती थी और मुझे सूखे वस्त्रों पर सुलाती थी। माता अनेक दुःख सहकर भी अपने पुत्र की सभी तरह से रक्षा करती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

गतं न्यूनतां नैव मातु र्ममत्वम्,
विलोक्यापि मां सर्वथाऽपूतगात्रम्।
विशोध्यैव सा मामतुष्यन्निकामम्
अमेध्याद्धि लोकस्तु गृह्णाति रत्नम् ॥३५ ॥

मल-मूत्रदि से सर्वथा गन्दे हुए शरीर वाले, मुझे देखकर भी मेरे प्रति माता का प्रेम कुछ भी कम नहीं हुआ। मेरी पूरी सफाई करके ही उसे पूरा सन्तोष मिलता था। यह बात सत्य है कि संसार गन्दे स्थान पर पड़े रत्न को साफ शुद्ध करके अपने पास रख लेता है।

शयानं विमुच्यैकदा जन्मदात्री,
गताऽऽसीद् यदा कर्मसम्पादनार्थम्।
तदाऽऽगत्य काचित्तु सन्तानहीना
कचान्मे च काँश्चिल्लुलावातिशीघ्रम् ॥३६ ॥

एक बार मेरी माता मुझ सोते हुए को छोड़कर जब कुछ आवश्यक कार्य पूरे करने के लिए गई हुई थी तो उसी समय किसी सन्तानहीन स्त्री ने वहाँ आकर मेरे सिर के कुछ बाल काट लिए।

विलोक्यैकदा मां ज्वरार्तं विषण्णम्,
जनन्या मुखञ्चापि जातं विरक्तम्।
विनिद्रा निषण्णा क्षपां तामनैषीत्
स्वपुत्रे विषण्णे न माता शयीत ॥३७॥

एक बार मुझे ज्वर से व्याकुल और उदास देखकर मेरी माता का मुख भी कान्तिहीन हो गया और वह रात उसने बिना सोए, बैठे ही बैठे बिता दी। पुत्र के दुःखी और उदास होते हुए माता कभी भी सुख चैन की नींद नहीं सो सकती।

यदा चैकदा प्रेतवाधां विभाव्य
तयाऽऽहूत एको मनुष्यस्तदैव।
सुगेहं मदीयं समागत्य दम्भी,
स 'ओझा' विकृत्यान्यनेकान्यकार्षीत् ॥३८॥

फिर एक बार मुझे प्रेत बाधा से प्रभावित जान कर मेरी माता ने उसी समय एक मनुश्य को घर पर बुलाया। उस दम्भी 'ओझा' ने मेरे घर आकर अनेक प्रकार के ढौंग रचने प्रारम्भ कर दिए।

कदाचित्तु वह्निं कदाचिच्च दीपम्,
कदाचिन्मुखं मे विलोक्यातितीव्रम्।
कदाचिच्च 'हुँ हुँ' सशब्दं स धूर्तः,
प्रगच्छेदवादीदतो योऽपि कोऽपि ॥३९॥

वह धूर्त 'ओझा' कभी तो पास में रखी अग्नि को, कभी पास में ही जलते दीपक को और कभी बड़ी तीव्र दृष्टि से मुझे देखकर बड़े भयंकर शब्द के साथ हुँ, हुँ, करता और कहता कि जो कोई भी यहाँ इस बालक को सता रहा है, वह यहाँ से तुरन्त भाग जाए।

यदाऽहं कदाचिद् रुरोदातितीव्रम्,
तथा सा तदा पाकशालाङ् गताऽभूत्।
ततोऽसाववादीत् सकोपं, कथं? त्वाम्,
समायाति मृत्यु र्गृहीतुं हठात् वै ॥४०॥

जब कभी मेरी माता पाकशाला में होती और मैं बहुत तेज रोता तो मेरी माता गुस्से से झुंझलाई हुई वहीं से कहती क्यों रोता है ? क्या तुझे मौत आ रही है ?

समाकर्ण्य मे रोदनं तद् ह्यजस्रं
ततः सा चचाल प्ररुष्टा सखेदम्।
उपागम्य पूर्वं तु मत्पृष्ठदेशे,
चपेटं ददौ मातृभावप्रपूर्णा ॥४१ ॥

मेरे उस लगातार रोने को सुनकर बड़े खेद और रोष से वह मेरी माता रसोई से उठकर चली और मेरे पास आकर, पहले उसने मेरी पीठ पर, मातृत्व भाव प्रदर्शित करती हुई ने एक थप्पड़-जड़ दिया।

चपेटाहतोऽहं रुरोदातितीव्रम्
तदा वत्सला सा चुचुम्बाननं मे।
अवादीच्च मां लालयन्ती प्रकामम्,
सुतः केन दुष्टेन दृष्टो मदीयः ॥४१ ॥

अपनी माता के प्रेम भरे उस चपेटे (थप्पड़) की मार से मैं और भी तेजी से रोने लगा। तब पुत्र को प्यार करने वाली मेरी उस माता ने बड़े स्नेह से मेरा मुख चूम लिया और मुझे बड़े प्रेम से दुलारती हुई मेरी माता ने कहा—अरे मेरे बालक को न जाने किस दुष्ट की नजर लग गई है।

ततो मां निजांके निधायैव सद्यः
पुनः सा गता पाकशालां पवित्राम्।
रताऽभूत्तथा पाककार्ये यथाऽऽसी-
दहञ्चापि तुष्टः प्रशान्तो बभूव ॥४३ ॥

फिर वह शीघ्र ही मुझे अपनी गोदी में उठाकर वहाँ से फिर उसी पवित्र रसोई घर में चली गई। रसोई में आकर वह अपने रसोई के कार्य में फिर वैसे ही लग गई जैसे पहले लगी हुई थी और मैं भी सन्तुष्ट और शान्त हो कर गोदी में लेट गया।

पपौ मातृदुग्धेन साकं तदाऽहं
बलं पौरुषं साहसं वीरभावम्।
न जाने कदाहङ्गतः पुष्टतां ताम्
समालभ्य यां याति वालो धरण्याम् ॥४४ ॥

उस समय मैं ने अपनी माता के दुग्ध के साथ-साथ बल पुरूषार्थ, साहस और वीरभाव को भी पी लिया। मुझे कुछ पता भी न चला कि मैंने उस पुष्टता को कब में प्राप्त कर लिया, जिसे प्राप्त करके कोई भी बालक इस धरती पर पैर रखने योग्य हो जाता है।

कदाचिद् यदाहं पयःपातुकामो,
जनन्येक्षितः प्रेमभावै र्विशुद्धैः ।
पयः सारभूतं ममत्वं स्वकीयम्,
समं मां पयोभि र्ददौ वत्सला सा ॥४५ ॥

जब कभी माता ने मुझे दुग्धपान के लिए उत्सुक देखा तो पुत्रवत्सला मेरी मा ने विशुद्ध प्रेमभाव से, अपने दूध के साथ-साथ मुझे अपना ममत्व भी पिला दिया ।

बुभुक्षुर्यदाऽहं महाच्चैररोदम्,
सुमाता समुत्थाय मां स्नेहसिक्ता ।
विधायाऽङ्कशय्याधिरूढं सुपुत्रा,
प्रशान्तं विधातुं सयत्ना बभूव ॥४६ ॥

जब भी कमी मैं भूख से व्याकुल हुआ बहुत जोर से रोया, तो मुझ से परम स्नेह करने वाली मेरी अच्छी माता मुझे उठाकर और अपनी गोदी में लिटाकर मुझे शान्त करने का प्रयास करती थी ।

यदा क्रन्दनं मे न जातं प्रशान्तम्,
तदा भीतिभीतेव माता मदीया ।
उवाचाऽद्य 'लू-लू' महानागतोऽत्र,
रुदन्तं सुबालं स धत्ते सदैव ॥४७ ॥

जब मेरा रोना किसी भी प्रकार शान्त न होता तो किसी अज्ञात भय से डरी हुई सी मेरी माता कहती कि आज तो यहाँ एक बहुत बड़ा लू-लू आया हुआ है । वह रोते हुए बालकों को पकड़ कर ले जाता है

समाकर्ण्य तन्नाम 'लू-लू' विशिष्टम्,
समालोक्य भीतां ततो जन्मदां स्वाम् ।
मदाक्रन्दनं तन्न जाने ह्यकस्माद्,
विलीनं गतं किं क्वलीनं गतं तत् ॥४८ ॥

'लू-लू' इस विशेष नाम को सुनकर और अपनी माता को भी उस 'लू-लू' से डरी हुई देखकर, अचानक ही मेरा वह रोदन, न जाने कहाँ और कैसे कब विलीन हो जाता ।

स 'हाऊ' स 'लू-लू' स 'कोको' विशालो
न केनाऽपि दृष्टः श्रुतश्चैव सर्वैः।
न दृष्टस्त्वया नैव दृष्टो मयाऽपि,
परन्त्वत्र लोके स नित्यः पुराणः ॥४९ ॥

वह 'हाऊ' अथवा 'लू-लू' अथवा 'कोको' बहुत ही विशाल और व्यापक है। आज तक उसे किसी ने भी देखा नहीं है, परन्तु सुना सभी ने है। न तुमने ही देखा है और न ही मैंने देखा है परन्तु वह इस लोक में नित्य और सदा से ही रहता आया है।

सुलेपेन तैलेन केशान् मदीयान्
विशोध्यैकदा मोदमाना ममाम्बा।
सुकृष्णेन वर्णेन भालं मदीयम्,
विधायाङ्कितं सा च सस्मार देवम् ॥५० ॥

एक बार मेरे केशों को सुगन्धित अच्छे लेप और तेल से भली प्रकार संवार कर, मन ही मन प्रसन्न होती हुई मेरी माता ने काले रंग की बिन्दी से मेरे मस्तक को अंकित कर देवता का स्मरण किया।

यदा वस्तुजातङ्गृहीतुं समर्था-
वभूताङ्करौ मे, तदा जन्मदात्री।
विचित्राण्यनेकानि सुक्रीडकानि,
ददौ प्रेमभावेन चोपायनानि ॥५१ ॥

जब मेरे दोनों हाथ कुछ वस्तुओं को पकड़ने में समर्थ हो गए तो उस समय मेरी माता ने अनेक प्रकार के विचित्र खिलौने और उपहार, बड़े प्रेम के साथ मुझे देने प्रारम्भ कर दिए।

सुवृद्धः पिता मे पितुश्चैव माता,
पिता मां सुमाता तथाऽन्ये सखायः।
कराभ्यां धरायां सरन्तं विलोक्य,
ह्यमन्दं प्रमोदं समे तेऽलभन्त ॥५२ ॥

मेरे पिता के बूढे माता पिता, मेरे पिता माता तथा अन्य मित्र, सम्बन्धियों ने जब मुझे हाथों से पृथिवी पर सरकते देखा तो उन सभी ने अत्यधिक आनन्द अनुभव किया।

कराभ्याञ्जनन्या गृहोत्वाँऽगुली द्वे,
गृहप्रांगणे वै यदाऽहं चचाल।
स्खलन्तं चलन्तं धरण्यां स्वपुत्रम्,
समालोक्य माता प्रसन्ना बभूव ॥५३॥

जब मैं अपने दोनों हाथों से, अपनी माता की दो अंगुलियों को पकड़ कर अपने ही घर के आंगन में डगमग-उगमग करता हुआ चला तो भूतल पर लड़खड़ा कर चलते हुए व गिरते हुए मुझे देखकर मेरी माता आनन्दित हो उठी।

द्वयो र्हस्तयोरात्मनो जन्मदा मे
समोदं हि मां ग्राहयित्वांगुली द्वे।
अथोत्साहयन्ती च साग्रे प्रसर्तुम्,
अवादीज्जनित्री 'प्रयाहि-प्रयाहि' ॥५४॥

मेरी माता बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने दोनों हाथों की, दो अंगुलियाँ मुझे पकड़ाकर, और धीरे-धीरे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हुई मुझसे कहती थी कि हाँ-हाँ चलो, चलो और आगे चलो।

विलोक्यैकदा मां रजोधूसरांगम्,
जनित्री जलैः शीतलै र्मां रुदन्तम्।
बलात्स्नापयित्वा तथा भूषयित्वा,
समोदं मदीयं ललाटं चुचुम्ब ॥५५॥

एक बार मेरी माता ने मुझे धूल से लथपथ अंगों वाला देखकर मुझ रोते हुए को शीतल-जल से बलपूर्वक स्नान कराकर और अच्छे-अच्छे वस्त्रों से सजाकर, बड़ी प्रसन्नता के साथ मेरे माथे को चूम लिया।

यदा चैकदा दैत्यशत्रोः प्रियांशम्,
मुखे स्वे निधाय प्रसन्नो बभूव।
तदा केन मित्रेण दृष्टोस्मि तत्र,
वयस्येन माता च विज्ञापिताऽभूत् ॥५६॥

जब एक बार मैं मिट्टी का कुछ अंश अपने मुख में रख कर प्रसन्न हो रहा था तो उस समय किसी साथी ने मुझे मिट्टी खाते देख लिया, और उसने माता से जाकर सब कुछ कह दिया।

यदा ताडितोऽहं तया प्रेमभावै-
ररोदं महोच्चैस्तु तारस्वरेण।
तदा मे मुखञ्चाश्रुजालै स्तथाभूत्
निशान्ते यथा पङ्कजं वै तुषारैः ॥५७॥

जब, बड़े प्रेमभाव से माता के द्वारा मैं पीटा गया तो मैं बड़े ऊँचे स्वर से जोर-जोर से रोने लगा। उस समय आँसुओं से मेरा मुख ऐसा लग रहा था माना प्रभात काल में कमल ओस की बूंदों से सुशोभित हो।

त्वयेत्यं कथं भक्षितो भूमिपिण्डः?
सुबालेन रेणुर्न खाद्या कदापि।
यदा वीक्षिता मुग्धभावेन माता,
तु मातृत्वभावेन सा विह्वलाऽभूत् ॥५८॥

माता ने मुझ से पूछा कि तूने मिट्टी क्यों खाई? अच्छे बालक मिट्टी कभी नहीं खाते। जब मैंने बड़े ही मुग्ध भाव से माता की ओर देखा तो वह मातृत्व भाव उमड़ आने के कारण अतीव विह्वल हो उठी।

यदा तर्ज्यते स्म स्व मात्रा कदाचि-
दरोदं च नाऽदं न दुग्धं पपौ च
तदा सा समाश्लिष्य मां च प्रसाद्य,
ददौ शार्करं सारयुक्तं पयो मे ॥५९॥

जब कभी मैं अपनी माता के द्वारा धमकाया जाता तो मैं रो देता और नाराज होकर न मैं कुछ खाता था और न दूध ही पीता था। तब वह मेरा आलिंगन कर और मुझे प्रसन्न करके मुझे मीठा और मलाई वाला दूध पीने को दिया करती थी।

यदाऽस्मिन्गृहे जन्म जातं मदीयन्
तदा मे पितुर्जन्मदात्री जगाद।
शृणुध्वं शृणुध्वं सुधन्याऽस्मि लोके,
प्रसीदामि संप्राप्य पौत्रं शुभांगम् ॥६०॥

जिस समय इस घर में मेरा जन्म हुआ तब प्रसन्न हुई मेरी दादी ने यह कहा था—सुनो! सुनो! आज इस लोक में मैं धन्य हूँ और सुन्दर तथा शुभ अंगों वाले पौत्र को प्राप्त करके बड़ी प्रसन्न हूँ।

यदा पञ्चवर्षाण्यतीत्य प्रसन्नः,
सुपौत्रो मदीयो भवेत्पूर्णगात्रः ।
तदैवास्य देवापगापूततीरे,
शिरोमुण्डनं स्यान्न पूर्वं ततोऽत्र ॥६१ ॥

मेरी दादी ने कहा था कि जब मेरा पोता पाँच वर्ष पूरे करके प्रसन्नता पूर्वक स्वस्थ शरीर वाला हो जायेगा तो तभी गंगा नदी के पवित्र तट पर इस बालक के सिर के बालों का मुण्डन होगा, उससे पहले नहीं ।

व्यतीतो यदा पंचवर्षान्तरालस्
तदा मे पिता बन्धुवर्गेण सार्धम् ।
समासज्य गोवत्सयानं विशालम्,
शुभे पर्वकाले सुगंगामवाप ॥६२ ॥

जब पाँच वर्ष का समय पूर्ण हो गया तो मेरे पिता अपने बन्धु बान्धवों के साथ, एक विशाल बैलगाड़ी तैयार करके शुभ पर्व के समय पवित्र गंगा तट पर पहुँचे ।

तदा तैः समं नापितस्तत्र चाऽऽसीद्
य आसीत, क्षुरैः कर्तिकाभिः सुनद्धः ।
मुहूर्ते शुभे बन्धुवर्गस्तथाऽन्ये,
विलोक्य स्थितं नापिताग्रे प्रसेदुः ॥६३ ॥

उस समय उनके साथ एक नाई भी था जो उस्तरे और कैंची आदि सामान से युक्त था । बन्धु वर्ग तथा दूसरे व्यक्ति शुभ मुहूर्त में मुझे नाई के आगे बैठा देखकर बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे ।

यदारब्धवान्नापितो क्षौरकर्म,
जगु र्गीतकानि प्रवृद्धास्तदैव ।
प्रहृष्टा स्तदासन् मनुष्याश्च नार्यः,
प्रसन्नस्तथासीदसौ नापितोऽपि ॥६४ ॥

जब उस नाई ने मेरे सिर के बाल उस्तरे से उतारने (काटने) शुरू किए तो वहाँ पर उपस्थित बड़ी बूढी स्त्रियों ने गीत गाने प्रारम्भ कर दिए । उस समय वहाँ पर उपस्थित सभी नर-नारी अत्यधिक प्रसन्न थे और वह नाई भी बहुत खुश हो रहा था ।

समालोक्य तन्नापिताऽस्त्रं निशात-
मरोदं महोच्चैः, परं मां निगृह्य।
पितुर्मे जनित्री निजांके निरुद्ध्य,
सुतस्थौ, कृतं नापितेन स्व कृत्यम् ॥६५॥

नाई के तेज, चमकते उस्तरे को देखकर मैं जोर से रो उठा परन्तु मुझे पकड़कर मेरे पिता की माता (मेरी दादी) मुझे गोदी में दबोचकर बैठ गई और नाई ने अपना काम पूरा कर दिया।

सुकेशैर्विहीनं स्व शीर्षं विभाव्य,
तथा दर्पणे वीक्ष्य विम्बं स्वकीयम्।
अरोदं, परं वान्धवा मे तथाऽन्ये,
समालक्ष्य मां हास्ययुक्ता बभूवुः ॥६६॥

अपने सुन्दर बालों से हीन, घोट-मोट सिर को जान कर तथा अपने प्रतिविम्ब को शीशे में देखकर मैं रो पड़ा परन्तु मेरे बन्धु-बान्धव तथा दूसरे अन्य व्यक्ति मुझे लक्ष्य करके हँस पड़े।

ततो मां गृहीत्वेतरे बान्धवा मे,
ह्यवापुः पवित्रं सुगंगातटन्तत्।
मिलित्वा च ते पंचवारं सुगांगे,
विनिक्षिप्य मां ते पुनर्लब्धवन्तः ॥६७॥

इसके बाद मेरे दूसरे बान्धव मुझे अपनी गोदी में उठाकर गंगा माता के पवित्र सुन्दर तट पर पहुँचे और वहाँ गंगा के पवित्र जल में सबने मिल कर मुझे पाँच बार फेंका और बार-बार मुझे अपनी गोद में उठा लिया।

सुभक्त्या सहर्षं समेते तदा त-
दगायन् मिलित्वा सुगंगामहत्वम्।
हरेर्बल्लभे ! मोक्षदे ! पुण्यतोये।
प्रपाहि स्व भक्तान् सुमातः ! प्रपाहि ॥६८॥

फिर उन सब ने मिलकर बड़ी प्रसन्नता के साथ भक्ति पूर्वक गंगा माता के महत्व को गाया। हे भगवान शंकर की प्रिये ! हे मोक्ष प्रदान करने वाली ! हे पवित्र जल वाली ! हे माता ! अपने भक्तों की रक्षा कर रक्षा कर।

विमलतरंगे ! गंगे ! मात !
स्तव गुणमहिमा भुवने ख्यातः ।
सहजपवित्रै र्यै र्यै र्ध्याता,
लोकान्मुक्तिस्तै स्तैराप्ता ॥
सहजपवित्रं गङ्गातीरम्,
सुरसरितश्चेत्पूतं तीरम् ।
येन सेवितञ्चामृतक्षीरम्,
विमलञ्जातं तस्य शरीरम् ॥
पीतं शुद्धं गाङ्गं यै र्यैर,
लब्धा मुक्ति र्लोके तैस्तैः ।
नेयम्मुक्ति र्लब्धा सर्वैर्
लब्धा गङ्गानिष्ठै र्भक्तैः ॥
वेत्ति नेत्थं गङ्गातीरम्,
क आयातः सुरनदीतीरम् ।
पीतं येनाऽपीदं नीरम्
नाऽसौ धत्ते पुनः शरीरम् ॥
येन सुरसरी यशः सुगीतम्,
येन यथेच्छं गाङ्गं पीतम् ।
येन च गीताशास्त्रमधीतम्,
तेन लोके किन्न हि, क्रीतम् ॥
गङ्गा यस्मिन्नरे प्रसन्ना,
यमदूता न हि तद् आसन्ना ।
मोदन्ते ये तीरनिषण्णास,
ते न भवन्ति लोके खिन्नाः ॥
गृहीत्वांगुलिञ्चैकदाऽहं स्वपित्रा,
प्रयातः समं ग्रामविद्यागृहं वै ।
प्रसन्नस्तदाऽऽसं तथाऽऽसीत् पिताऽऽपि,
मदीया च माताऽपि लेभे प्रमोदम् ॥६९ ॥

फिर एक दिन मैं अपने पिता की अंगुलि पकड़ कर उनके साथ गाँव की ही पाठशाला में पहुँचा। उस समय मैं भी प्रसन्न था और मेरे पिताजी भी प्रसन्न थे। मेरी माता की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना ही नहीं था।

सुविद्यागृहे मे प्रवेशो यदाभूद्
तदा तद् दिनादेव चाञ्चल्यभावः।
तथा शासितोभूद् यथा मत्तदन्ती,
अयोर्निर्भितेनाङ्कुशेन प्रसह्य ॥७० ॥

जिस दिन मेरा विद्यालय में प्रवेश हुआ उसी दिन से मेरी चंचलता पर ऐसे रोक लग गई जैसे मस्त हाथी लोहे के बने अंकुश से बल पूर्वक क़ाबू में कर लिया जाता है।

सुशिक्षासमारम्भकालं विभाव्य,
पिता मे मदीयाञ्जनित्रीमुवाच।
सुवालोऽस्मदीयः सुविद्यां ग्रहीतुम,
समर्थोऽस्ति विद्यागृहं प्रापणीयः ॥७१ ॥

अपने पुत्र की शिक्षा के आरम्भ कराने का उचित समय जानकर मेरे पिता ने मेरी माता से इस प्रकार कहा—इस समय अपना बालक विद्या ग्रहण करने के योग्य हो गया है अतः इसे विद्यालय में दाखिल कर देना चाहिए।

सुविद्यागृहं प्राप्य पूर्वं स बालः
समालोक्य वालान्बभूव प्रसन्नः।
गुरो रौद्ररूपं यदा तत्र दृष्टम्,
तदा तस्य मोदो न जाने गतःक्व? ॥७२ ॥

विद्यालय में पहुँच कर, अपने साथी बालकों को देखकर पहले तो वह बालक बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु जब उसने अपने गुरुजी का रौद्ररूप देखा तो उसकी प्रसन्नता न जाने कहाँ विलीन हो गई।

पुरा बाललीलाप्रसक्तः कदाचिद्
वयस्यैः समं गोप्रकोष्ठं ह्यगच्छम्।
चिरान्नैव दृष्टो यदाऽहं जनन्या,
तदासौ बभूवाति दुःखार्तदीना। ॥७३ ॥

पहले कभी में बालकों के साथ खेलता अपनी गोशाला में पहँच गया और वहाँ बहुत देर तक खेलता रहा। जब बहुत देर तक मैं अपनी माता की दृष्टि के सामने नहीं पड़ा तो वह बहुत दुःखी हुई।

तदान्वेष्टुकामा समासाद्य मार्गम्,
महोच्चैः स्वरेणैव चेत्थञ्जगाद।
'कुतस्त्वं? कुतस्त्वं? कुतस्त्वं? सुवत्स?'
तदाकर्ण्य वाचं त्वरोदं महोच्चैः ॥७४॥

तब मेरी माता मुझे खोजने की कामना से मार्ग में आकर ऊंचे स्वर से इस प्रकार पुकारने लगी अरे बेटा। कहाँ हैं? कहाँ है? तो मैं उसकी इस आवाज को सुनकर जोर से पड़ा।

रुदन्तं गवां मध्यगं मां विभाव्य
विसस्मार माता स्व सर्वं प्रबोधम्।
समुत्प्लुत्य शीघ्रं सुतं मां निगृह्य,
निजाङ्के निधाय प्रफुल्ला बभूव ॥७५॥

मुझ रोते हुए को गौओं के मध्य फंसा समझकर, माता अपनी सब कुछ सुध बुध भूल गई। उसने जल्दी से झपट कर अपने मुझ पुत्र को पकड़ कर और अपनी गोदी में लेकर ही प्रसन्नता अनुभव की।

स्वकीयौ करौ द्वौ स्व भाले निधाय
प्रभुं कृष्णचन्द्रं ववन्दे स मोदम्।
प्रभो? ते कृपाया न मर्याऽस्ति काचित्
सहस्रैः करै स्त्रायतेऽत्र स्व भक्तान् ॥७६॥

मुझे अपनी गोदी में लेकर प्रसन्न हुई माता ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर अपने माथे से लगाकर भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की बड़े प्रेम के साथ वन्दना की। हे प्रभु! तुम्हारी कृपा की कोई सीमा नहीं है। तुम अपने भक्तों की अपने हजारों हाथों से सदा रक्षा करते रहते हो।

यदा चैकदा स्वच्छलोलाऽलकं माङ्
गृहीत्वा गताऽऽसीच्छिवं पूजनाय।
तदाहं तदङ्काधिरूढः प्रसन्नो
महाकालकालं करालं ननाम ॥७७॥

एक बार, जब मेरी माता स्वच्छ बालों वाले मुझ बालक को लेकर भगवान शिव की पूजा के लिए शिव मन्दिर गई हुई थी, तो तब माता की गोदी में चढ़े हुए, प्रसन्न होते हुए मैंने, काल के भी कराल महाकाल, भगवान शिव को प्रणाम किया था।

अयाचच्छिवं देवभूमिस्थितं सा,
सुतो मे महादेव ! भूयाच्छतायुः ।
तथा शान्तचित्तः स्वदेशस्य भक्तो,
यशस्वी च सद्धर्मनिष्ठः प्रतापी ॥७८ ॥

देवभूमि में स्थित शिव मन्दिर में विराजमान भगवान शंकर से मेरी माता ने यह याचना की— हे महादेव ! मेरा पुत्र शतायु हो तथा शान्त चित्त वाला, देश भक्त यशस्वी सद्धर्मनिष्ठ और प्रतापी हो ।

सुतोऽयं मदीयो भवेन्मातृभक्तो
दयालुः कृपालुः सुशीलः सुवाग्मी ।
स्व कर्त्तव्यशीलश्च सन्मार्गदक्षो ।
विवेकी तथा ज्ञानविज्ञानवृद्धः ॥७९ ॥

हे प्रभो ? मेरा यह पुत्र मातृभक्त, दयालु, कृपालु, सुन्दर स्वभाव वाला, अच्छा विद्वान वक्ता, अपने कर्त्तव्यों के प्रति सदा जागरूक रहने वाला, सन्मार्ग पर चलने में दक्ष, अच्छे बुरे का ज्ञान रखने वाला तथा ज्ञान और विज्ञान में प्रवीण हो ।

प्रणत्य प्रभुं सा ममाप्युत्तमाङ्ग-
मुमाबल्लभस्य स्मरारेः पुरारेः ।
पवित्रेषु पादारविन्देषु माता,
पुनः स्थापयामास भूत्वा प्रसन्ना ॥८० ॥

प्रसन्न होकर मेरी उस माता ने भगवान शंकर को प्रणाम करके काम देव के पुर के शत्रु उमापति भगवान शिव के पवित्र चरणारविन्दों में मेरा मस्तक फिर दोबारा रख दिया ।

तयाऽऽराधितश्चण्डिकाबल्लभोऽसौ,
ददावाशिषं शान्तभावेन चेत्थम् ।
विलोलाऽलको बालको बाल बुद्धिश्
चिरायु र्भवेदाप्नुयात् सर्वसिद्धीः ॥८१ ॥

मेरी माता द्वारा आराधना किए हुए देवी चण्डिका के पति, भगवान शंकर ने बड़े शान्त भाव से इस प्रकार आशीर्वाद दिया-चंचल बालों वाला तेरा यह बाल बुद्धि बालक चिरायु होगा और सभी सिद्धियों को प्राप्त करेगा

स्वचित्ते तु लब्धाशिषोऽ हं दधार
यतिष्ये सदाजन्मभूरक्षणाय ।
न किञ्चिन्मदीयं यदाप्स्यामि लोके
समग्रं हि तन्मे भवेज्जन्मभूम्यै ॥८२ ॥

भगवान शिव से आशीर्वाद प्राप्त करने वाले मैंने अपने मन में यह विचारा कि मैं अपनी जन्म भूमि की रक्षा के लिए सदैव प्रयत्न करता रहूँगा और इस संसार में मैं जो कुछ भी प्राप्त करूँगा वह मेरा न होकर सब का सब जन्म भूमि के लिए ही होगा ।

कदाचिद् विशुद्धोदकै में शरीरम्
विशोध्य प्रसन्ना विसस्मार सर्वम् ।
ललाटं मदीयञ्च कृष्णाञ्जनेन
विधायाङ्कितं प्रेमभावैरचुम्बत् ॥८३ ॥

कभी एक बार मेरे धूल धूसरित शरीर को पवित्र साफ जल से साफ करके प्रसन्न हुई माता मुझे देखकर सब कुछ भूल गई और मेरे माथे पर काला टीका लगाकर मुझे प्रेमभाव से चूमने लगी ।

यदा चैकदा मां निजाङ्काधिरूढम्
धरण्यां विमुच्याऽतिवेगेन शीघ्रम् ।
पयः पाकशालाग्निसम्पर्कतप्तम्,
समालोक्य सा पाकशालां विवेश ॥८४ ॥

एक बार जब मेरी माता अपनी गोद में लिए हुए मुझे, रसोई घर के चूल्हे पर अग्नि की तीव्रता के कारण, रखे दूध के निकल जाने की सम्भावना करके, जल्दी से भूमि पर ही उतार कर रसोई घर में चली गई ।

तदाऽहं रुदोदाऽति बेगन तीव्रम्,
उपागत्य सा मां तु मातृत्वपूर्णा ।
उपाघ्राय भाले महास्नेहसिक्ता,
प्रमार्ज्याश्रुपातं निजांके दधार ॥८४ ॥

तब मैं एकदम तेजी से रोने लगा तो मातृ-भाव से मेरी माता ने मेरे पास में आकर स्नेह पूर्ण मन से मेरे माथे को सूंघ कर, और मेरे बहते हुए आँसुओं को पोंछकर मुझे अपनी गोद में उठा लिया ।

तथा चैकदा मे शुकः पञ्जरस्थः
सुपुष्टः सुहृष्टो य आसीत्प्रसन्नः।
समाकर्ण्य वाचं नृणां यो विशुद्धाम्,
समर्थोऽनु वक्तुं स आसीत् प्रसिद्धः ॥८६ ॥

एक बार पिंजरे में बन्द मेरा तोता जो सभी तरह से हृट पुष्ट और प्रसन्न था तथा जो मनुष्यों की वाणी सुनकर उसकी नकल करने के लिए प्रसिद्ध था।

विहायैकदा पञ्जरं पञ्जरस्थः,
स्व पक्षौ प्रसार्योत्पपात प्रतीगः।
शुकं व्योमयातं ह्यविश्वासिनं तम्
न विस्मर्तुमद्यापि शक्तः कदाचित् ॥८७ ॥

पिंजरे में रहने वाला वह विपरीत गामी तोता पिंजरे से बाहर आकर, अपने पंख फैलाकर, पिंजरे को वही छोड़कर आकाश में उड़ गया। आकाश में गए उस अविश्वासी तोते को मैं आज भी किसी भी प्रकार भूल नहीं सका हूँ।

शिशुत्वे मनुष्यो विचित्रो हि कश्चित्
समायात एकः पितु में सकाशम्।
नरः प्रेमभावैः स अंके ग्रहीतुम्
सयत्नो यदाभूत्तदाहं त्वभैषम् ॥८८ ॥

मेरे वचपन में कोई विचित्र मनुष्य मेरे पिता के पास किसी काम से आया। वह बेचारा अजनवी व्यक्ति बड़े प्रेमभाव से मुझे गोदी में लेने के लिए जैसे ही तत्पर हुआ वैसे ही मैं उस से डर गया।

विभीतो हि तस्मादहं रात्रिकाले
प्रसुप्तोऽपि तं स्वप्नकाले निरीक्ष्य।
प्रगाढां सुनिद्रामकाण्डे विहाय
महोच्चैररोदं च भूमौ पपात ॥८९ ॥

उस अजनवी व्यक्ति से डरा हुआ मैं, रात के समय सोता हुआ भी स्वप्न में उस व्यक्ति को देखकर, अ समय में ही गाढी निद्रा को त्याग कर अचानक चीख कर रोपड़ा और भूमि पर जा गिरा।

शिशुत्वं सदैवेष्यते सर्वलोकैर्
जरत्वन्तु कस्मै कदा रोचते न।
जराजीर्णजीव स्तु जीवञ्जगत्याम्
जरत्वं न मूल्यं विनाऽपीहतेना ॥९० ॥

बचपन को तो सभी सदा चाहते हैं। बुढापा किसी को भी क़भी अच्छा नहीं लगता। बुढापे के कारण जीर्ण शरीर वाला जीवं भी इस संसार में जीवन बिताता हुआ,बुढापे को बिना मूल्य के भी नहीं लेना चाहता।

यथोद्यानभूतालतापुष्पगन्धो
विनष्टः पुन र्मार्दवं नैव धत्ते।
तथैवात्र लोके व्यतीतं शिशुत्वम्।
प्रयत्नैः शतैर्लभ्यते नैव जीवैः ॥९१ ॥

जिस प्रकार उपवन में होने वाली लताओं के पुष्पों की गन्ध एक बार नष्ट हो जाने पर फिर दोबारा वैसी ही स्वस्थ नहीं हो पाती उसी प्रकार इस संसार में एक बार गया हुआ बचपन सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी मनुष्यों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।

नदीनां जलानां प्रवाहो यथैव
सरत्यग्रमेवात्र लोके प्रसिद्धिः।
तथा शैशवं सर्वदा वर्धतेऽत्र,
गतं यत्परावर्तते तन्न भूयः ॥९२ ॥

जिस प्रकार जगत में यह प्रसिद्धि है कि नदियों के जलों का प्रवाह सदा आगे ही बढ़ता है उसी प्रकार बचपन भी सदा बढ़ता ही रहता है। बचपन का जो अंश बीत जाता है। वह फिर कभी लौट कर वापस नहीं आता।

नरेशो भवेद् वा भवेद् भिक्षुको वा,
मनुष्यो भवेद् वा भवेदन्यजीवः।
इहागत्य सर्वे निजं बाल्यकालम्,
प्रपूर्णं विधातुं सदा कामयन्ते ॥९३ ॥

राजा हो या भिखारी, मनुष्य हो अथवा अन्य कोई दूसरा जीव सभी इस संसार में आकर अपने बचपन को भरा पूरा बनाने के लिए सदा ही लालायित रहते हैं (कामना करते है)

रुदन्तं स्वकीयं सुतं याचकोऽपि
न शक्नोति दृष्टुं कथञ्चिद्धि लोके।
धनाढ्यः पुनः क्लिश्यमानं सुतं स्वङ्
कदापीक्षितुं नैव शक्नोति गेहे ॥९४॥

इस संसार में एक भिखारी व्यक्ति भी अपने रोते हुए बच्चे को किसी भी प्रकार देख नहीं सकता, फिर धनाढ्य व्यक्ति अपने पुत्र (शिशु) को दुःखी होते हुए अपने घर में कभी नहीं देख सकता।

यथा दीनपुत्रः स्व पित्रोः प्रसादम्
अवाप्येह माद्येन्न शंकाऽस्ति काचित्।
तथाऽदीनपुत्रेण पित्रोः प्रयत्नात्
सदाऽऽस्वाद्यते सर्वसौख्यं समोदम् ॥९५॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस प्रकार निर्धन व्यक्ति का शिशु अपने माता-पिता की प्रसन्नता प्राप्त करके सदैव प्रसन्न होता है उसी प्रकार धनवान व्यक्ति शिशु भी अपने माता-पिता के सत्प्रयत्नों से सभी सुखों का आनन्द पूर्वक भोग करता है।

शिशुत्वं प्रफुल्लं न देशेऽस्ति यस्मिन्
न सौख्यं न हर्षं न मोदो हि तस्मिन्।
अनेकानि दुःखान्यसह्यान्यभावा
वितन्वन्ति पाशं हि तन्नाशकाय ॥९६॥

जिस देश में बचपन फला-फूला नहीं रहता उस देश में न सुख रहता है, न हर्ष रहता है और न ही प्रसन्नता रहती है। उस देश के विनाश के लिए अनेक असह्य दुःख और अभाव अपना अपना जाल फैलाते रहते हैं।

यदीच्छाऽस्ति देशो भवेद् विश्ववन्द्यो
नमस्यः प्रशस्यो वरेण्योऽग्रगण्यः।
तु सर्वे मिलित्वा यतन्तां तथैव,
यथा शैशवं स्यात्प्रसन्नं प्रफुल्लम् ॥९७॥

यदि यह कामना है कि अपना देश विश्व का बन्दनीय, नमन किए जाने योग्य, प्रशंसा किये जाने योग्य, वरेण्य और प्रथम कोटि का नेता बने, तो सभी को मिलकर ऐसे यत्न करने चाहिएँ जिनसे देश का शैशव सभी प्रकार से प्रसन्न और फला-फूला बने।

यथोद्यानवृक्षोत्थपुष्पै र्मनोज्ञैर्,
महोद्यानभूमि र्विभाति प्रकामम् ।
तथा देशजातेन वै शैशवेन,
प्रफुल्लेन देशः समृद्धिं प्रयाति ॥९८ ॥

जिस प्रकार उपवन के वृक्षों पर खिलने वाले मनोहर पुष्पों से उद्यान की भूमि अत्यधिक सुशोभित होती है उसी प्रकार देश में जन्म लेने वाले बचपन के प्रसन्न रहने से देश उन्नति की ओर बढ़ता है ।

महाकष्टदायां निशायां गतायाम्,
निशान्ते पुनर्भानुरायाति वालः ।
स मध्याह्नकालं समेत्य प्रचण्डः,
सदा द्योतते वीरवेशो युवैव ॥९९ ॥

महान कष्ट देने वाली, भयंकर रात के बीत जाने पर प्रातः काल सूर्य फिर बाल रूप में उदय होता है । वही बाल सूर्य मध्याह के समय प्रचण्ड बनकर, वीर वेषधारी युवक के समान प्रकाशित होने लगता है ।

यदि द्रष्टुकामा वयं भारतं नः
क्षुधादैन्यदारिद्र्यविद्वेषहीनम् ।
अखण्डं दृढं चैकतासूत्रनद्धम्
तु संरक्षणीयं शिशुत्वं नवीनम् ॥१०० ॥

यदि हम अपने देश भारत को भूख, दीनता, गरीबी, और द्वेष भाव से मुक्त, अखण्ड, दृढ और एकता के सूत्र में बंधा हुआ देखना चाहते हैं तो हमें नए बवचन की सभी तरह से रक्षा करनी होगी ।

गतं शैशवं नैव लभ्यं तथैव,
दिनान्ते यथा भानुतापो न लभ्यः ।
निशान्ते पुनर्भानुरेति स्व वाल्यम्,
सुजीवोऽपि जन्मान्तरे वै शिशुत्वम् ॥१०१ ॥

बीता हुआ बचपन उसी प्रकार दोबारा प्राप्त नहीं किया जा सकता जिसप्रकार सायंकाल होने पर सूर्य का ताप प्राप्त नहीं होता । रात्रि बीतने पर सूर्य फिर दोबारा अपने बचपन को प्राप्त करता है । प्राणी भी मरकर दूसरे जन्म में ही बचपन प्राप्त करता है ।

द्वितीयम्

तारुण्यशतकम्

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

भूमिका

शैशवं, तारुण्यं वार्धक्यं चेति दशात्रयं प्राणिजीवनस्यापरिहार्यम्। तत्र तारुण्यं नाम यौवनम्, उद्दीपना, शक्तिः, बलवत्त्वम्, कार्यक्षमत्वम्, तेजोवत्त्वम्, मनोविमोहनत्वम् इत्यादिरुपेणावधार्यते। जीवनस्येयमवस्था महत्वपूर्णा ह्यत्यन्त जटिला च। अस्यां दशायां मानवः स्व-पौरुष-विनियोग द्वारा आत्मामिलाषं चरितार्थं कर्तुं यतते/सुख-दुःखात्मके संसारेऽस्मिन् मार्गद्वयंवर्तते, सन्मार्गः कुमार्गश्च। यः सन्मार्गे आत्मानं परिचालयति स वै विवेकी-ज्ञान-सम्पन्नः यः सन्मार्गं विहाय मन्दाशयं पूरयितुं कुमार्गं भजते, स अज्ञानाच्छन्नो मूढः। विवेकी सत्यपथमव लम्बयन्जीवने उत्तमं लक्ष्यं साधयति। उच्छृंखलस्तु दुराचारो हीनवृत्तिसक्तः सन् लक्ष्यभ्रष्टो निपतति

तारुण्यमतिगहनम्। महाकविवाणभट्टेन कादम्वर्यां शुकनासोपदेशप्रसंगे तारुण्यस्य स्वरूपं सविस्तरं वर्णितम् महाकवि-भर्तृहरि-कृतके शृंगार-शतकादौ तारुण्यस्य कुप्रभाव-विषये विशदं निगदितम्

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्॥

इति चाणक्यवाक्यं सर्वजनविदितम्। तारुण्ये चंचलत्वं, नैसर्गिकमेव। परन्तु मानवः स्वयं स्वमार्गस्य निर्धारकः। यौवनस्यानर्थकारित्वं भुवि सर्वानुभव-सिद्धम्। अतो नीतिशास्त्रकारै र्मानव-जीवन दर्शनमालोक्य सन्मार्गे परिचालनार्थं समुपदेशा वितरिताः।

विशेषतस्तारुण्ये दीप्यते शृंगारः। रतिपति र्मन्मथोऽस्य देवता। स सकमनीय-कामिन्यायुध-माध्यमेन जगज्जनं स्ववशं करोति। सत्यमुक्तं शृंगारशत के महाकविना भर्तृहरिणा—

विश्वामित्र-पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः
तेऽपि स्त्रीमुख-पंकजसुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवाः।
तेषामिन्द्रिय-निग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यः प्लवेत् सागरे।

यस्तु जितेन्द्रियः संयमशीलः, सं स्वात्म-दमन द्वारा त्रिलोकं जेतुं समर्थः। परं कन्दर्प-दर्प-दलने तादृशो जनः पृथिव्यां विरलः।

तारुण्यस्यालोचनावसरे कविवरः **कृष्णदत्त शर्मा शास्त्रि** महोदयप्रणीतं **'तारुण्यशतकम्'** नाम गीतिकाव्यमुल्लेखनीयम्। अत्र रचयिता तारुण्य कालस्य विविधविभावा विवेचिताः। मनोवैज्ञानिकविश्लेषणसमेतं जीवनधर्मित्वं वास्तववादित्वमत्र सुपरिस्फुटम्। स्थलविशेषेषु भर्तृहरिशतकस्य प्रभावः परिलक्ष्यते।

तारुण्यस्य सद्विनियोगप्रतिपादने कविवरेण कृष्णदत्त शर्मणा स्वमौलिकताया निदर्शनं प्रदत्तम्। तारुण्यस्य प्रभावः युवकयुवतीनां परस्पराकर्षणम् अनंगदशाः, तारुण्यस्य सुविनियोगः अपरपक्षेतस्य दुर्विनियोगात् कुपरिणामः, देशभक्तानां तरुणानां प्रशंसनीयता भारतवर्षरुपां देशमातृकां प्रति सभक्तिकवन्दना इत्यादयः प्रसंगा अत्र **तारुण्यशतके** सुप्रतिपादिताः सन्तः कविप्रतिभाया विशेषत्वं परिचिन्वन्ति। गीतिकाव्यमेतत् सहृदय-जन ग्राह्यं भविष्यति इति दृढ विश्वासः। संस्कृत साहित्यं प्रति **कृष्णदत्त कवेः** सारस्वतावदानं निश्चितमभिनन्दनीयम्

'तारुण्यशतके' भाषा प्रसादगुणमयी, वैदर्भी रीतिसम्पन्ना। सरल-सरस सुबोध-सुन्दर-विशदा पदावली पाठकातां मनोविनोदिनी प्रतिभाति। अत्र रचना शैल्यां वागाडम्वरोऽथवा क्लिष्टत्वं न विद्यते। उफ्जातिछन्दः कविकृतौ प्राधान्यमावहति। प्रसंगानुसारमुपमा-रूपकानुप्रासादयोऽलंकाराः काव्यरचनायाः सुपरिचायका विराजन्ते। शतकेऽस्मिन् यौवनस्य प्रादुर्भावो वर्ण्यते। अत्र अश्लीलतादिदोषलेशोपिनास्ति। कविवरेण सम्यक प्रयासः कृतः सदुपयोगविषये पौरुषप्रदर्शने जनहित सम्पादने तारुण्यस्य सार्थकतां प्रतिपादयितुम्।

पंचेषुसम्मांहनस्य सर्वव्यापित्वं वर्णयता **कृष्णदत्तकबिना** यथार्थमभिहितम्—

नास्तीदृशः कोऽपि पुमान्नृलोके,
योऽनंगवाणै र्न भवेत् प्रविद्धः।
जितेन्द्रिया ज्ञानधना मुनीन्द्रा,
मारं विजेतुं न तु तेऽपि शक्ताः।

उच्छृंखलयुवकानां धूर्तत्वं, कामुकत्वं, निर्लज्जत्वं श्वानप्रवृत्तिं च प्रतिपादयता कविवरेण वर्ण्यते—

आचारहीना मदनेषुविद्धाः
स्वच्छन्दशीला व्यसनेषु रक्ताः।
गतत्रपा इन्द्रियभोग-सक्ताः,
श्वानो यथाऽटन्ति तथा भ्रमन्ति॥

अपरतः सच्चरित्र सम्पन्नानां तरुणानां महनीयत्वं प्रकटितम्—

सौम्याः सुशीलाः पुरुषार्थदक्षाः
सद्वृत्तशीला विजितेंन्द्रियाश्च।
नम्रस्वभावा युवका उदारा
केषां जनानां न हि वन्दनीयाः॥

तारुण्यस्य कुऽप्रभावानुशीलनेन साकं प्रसंगतो देशस्य साम्प्रतिक-दुर-वस्थाऽपि सूचिता यथा—

ईर्ष्या - घृणा - द्वेष - विरोधभावा
हिंसा-बुभुक्षा स्वजनापभमानः ।
उत्कोचवृत्तिः परवचनं च
कृन्तन्ति देशस्य विकासवृक्षम् ॥

देशमातृकाया भारतभूम्याः कृते सेवापरायणानां समुत्सर्गीकृतप्राणानां तरुणानां वन्दनीयत्वं कविलेखन्यां सुस्पष्टमेव । यथा—

ये मातृभूमिं समुपासमानाः
स्वदेशरक्षाध्वरवह्निकुण्डे ।
प्राणान् प्रियान् जुह्वति मोदमाना
स्ते तु प्रशस्या युवकाः सदैव ॥

एवं तारुण्यशतकस्य अनेकानिपद्यानि हृद्यानि चानवद्यानि शोभन्ते । यौवनं न केवलं ' भोगार्थमेव, त्यागार्थमपि प्रतिष्ठितम् । यौवनं तु प्रकष्टसमयः स्वकीय-चरित्र-प्रकाशनार्थं, सामाजिक-परोपकारसाधनार्थं, राष्ट्रभक्ति-प्रदर्शनार्थम् । त्यागे भोगः एवास्माकं भारतीयसंस्कृते-वैशिष्ट्यम् । यौवनेऽपि त्यागपूतं जीवनं, साफल्य-मण्डितं विराजते परोपकारव्रतचर्याणाम् । कविवर**कृष्णदत्तेन** मुख्यतो यूनां कृते देशात्मवोधकत्वं निरूपितम्, अहिंसा-सत्य-शान्ति-दया-क्षमादि-सद्गुणविभूषिताया भारतजनन्याः सुरक्षणार्थम् ।

धर्मार्थ-काम-मोक्षरूप-चतुर्वर्गस्य अनुशीलनेन ज्ञायते यत् मानवजीवनं महत् । धर्माविरुद्धः सर्वैः सेवितव्यः । तारुण्यकाले भोगोत्कर्षसमेतः त्यागविषयोऽपि ध्येयः । तारुण्यस्य सदुपयोगेन महनीया सिद्धिः प्राप्तुं शक्यते । अतस्तारुण्येशिष्ट-संयत-व्यवहार- प्रदर्शनेन, स्व तेजः प्रकाशनेन, व्यक्तित्व विकासनेन, समाजस्य राष्ट्रस्य च समुन्नतिं विधाय कर्तव्यमाचरणीयम् । चंचलमपि तारुण्यं सत्यथपरिचालनया मंगलकारकं भवति । सचेतनो जनो यौवनस्य दुरुपयोगं न कुर्वन्, सन्मार्गे विहरन् कृतार्थतां लभते ।

कविवर-**कृष्ण दत्तेन** प्रस्तुते **तारुण्यशतके** तारुण्यस्य सत्परिचालनेन सद्गतिर्निर्देशिता । सभाजन-भाजनानि ते भवन्ति ये संयम-परायणाः सन्तः तारुण्यं मंगल-वर्त्मनि विकाशयन्तः स्वजन्म भूमि-हितं साधयन्ति ।

प्रसंगेऽस्मिन् मम 'मातृ गीतिकाजंलि रिति काव्यस्य जीवन गीतिकायाः पद्यमेकं स्मृतिपथमायाति—

वृतसौजन्ये स्वपाञ्चजन्ये,
मुञ्च वितन्द्रं मन्द्रनिनादम् ।
नीलकण्ठतां शीलय सलयं
तर्जय विजयी विषजविषादम् ।
नाशय शयनं पार्थिवमञ्चे
जागृहि सुतरां गृह-प्रपञ्चे ॥
गहनं चञ्चल यौवनम्
जीवनं सुन्दरम् सुन्दरं तनु-तपोवनम् ।

परिशेषे कविवर-कृष्णदत्त शर्म शास्त्रि महोदयस्य लेखनी सुरभारती रचनायां भारतीय-संस्कृति-प्रतिष्ठापने च सुप्रशस्ता सुदृढा नितरामव्याहता प्रसरतु इति महाप्रभुः श्री जगन्नाथ चरणारविन्दयोः सप्रश्रय-प्रणतांजलयः अलमति विस्तरेण इति शम् ।

संस्कृत-विभाग-मुख्यः
सर्वकारीय-महाविद्यालयः
भवानी पाटना-७६६०० ।
कलाहाण्डी (ओडिशा)
दि० १२/४/९६

विदुषां वशंवद—
डा० हरेकृष्ण मेहेरः
एम० ए० स्वर्ण पदक प्राप्तः (बनारस)
पी० एच० डी० (बनारस) डिप्लोमा-इन-जर्मन

तारुण्यशतकम्

तरणिजातटकुञ्जबिहारिणो
रसिकमण्डलमध्यशिरोमणेः ।
नवलयौवनकान्तिकलानिधेर्
भवतु मे शुभदञ्चरणाम्बुजम् ॥

सकलसभ्यसमाजसमादृतो,
मृदुलहास्यतिरस्कृतमन्मथः ।
रसिकगोपसमूहसुनायको,
भवतु मे रसनारसपोषकः ॥

व्रजाङ्गनास्नेहसमुद्रमध्ये,
आकण्ठमग्नं, हृतभक्तपापम् ।
कलिन्दजातीरविहारशीलम्,
नमामि कृष्णं नवयौवनाप्तम् ॥१ ॥

व्रजगोपिकाओं के स्नेह रूपी समुद्र में कण्ठ तक डूबे हुए अपने भक्तों के पापों को दूर करने वाले, कलिन्द की पुत्री यमुना के किनारे पर विहार करने वाले, नव यौवन को प्राप्त करने वाले, नव युवक श्री कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।

अनंगभूतोऽयमनंगदेव,
अव्याहताज्ञो जितजीवलोकः ।
तुच्छातितुच्छञ्च महोदयञ्च,
क्लिश्नाति नित्यं विवशं युवानम् ॥२ ॥

सारे संसार के जीवों पर विजय प्राप्त करने वाला, व्यवधान रहित सफल आदेश वाला, अशरीरी होते हुए भी यह कामदेव, तुच्छ सेभी तुच्द और महान उदार व्यक्ति एवं अपने प्रभाव के कारण विवश युवक को सदा ही दुःख दिया करता है ।

काष्ठे यथाग्निः, सुजले च शैत्यम्,
दुग्धे च हृद्यं नवनीतमेव ।
अनंगसत्तापि तथैव पुंसु,
गूढापि काण्डे ननु भासतेऽत्र ॥३ ॥

जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि, जल में शीतलता, और दूध में हृदय को अच्छा लगने वाला नवनीत छिपा रहता है उसी प्रकार मनुष्यों में (युवतियों में) भी अनंग काम देव की सत्ता गुप्त रूप से छिपी रहती है जो समय आने पर प्रकट हो ही जाती है ।

वह्निर्यथा दारुचयं विशालम्
शनैः शनैरत्ति बिना प्रयासम् ।
यूनां तथा यौवनमत्र लोके,
करोत्यशेषं नवयौवतं वै ॥४ ॥

जिस प्रकार अग्नि काष्ठ के बड़े से बड़े ढेर को बिना किसी प्रयास के धीरे-धीरे जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार इस संसार में नव युवकों के यौवन को नवयुवतियों का समूह नाम शेष कर देता है ।

यथा जले प्रस्तरपातनेन,
संजायते रश्मिविलासलीला ।
विशुद्धचित्तेषु तथैव यूनाम्,
मारोद्भवो यौवतदर्शनेन ॥५ ॥

जिस प्रकार जल में पत्थर फैंकने से लहरों की विलास लीला होने लगती है उसी प्रकार युवकों के विशुद्ध चित्तों में भी नव युवतियों को देखकर काम भावना का प्रादुर्भाव होने लगता है ।

नास्तीदृशः कोऽपि पुमान् नृलोके,
योऽनंगवाणै र्न भवेत्प्रविद्धः ।
जितेन्द्रियाः ज्ञानधना मुनीन्द्रा,
मारं बिजेतुं न तु तेपि शक्ताः ॥६ ॥

इस मर्त्यलोक में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो काम देव के वाणों से आहत न हुआ हो । बड़े-बड़े जितेन्द्रिय, ज्ञानी ध्यानी, मुनि जन भी काम देव को नहीं जीत सके हैं ।

यथाम्लतां प्राप्य पयो विशुद्धं
विशीर्णतां याति शतैः प्रयत्नैः ।
विशुद्धचित्तोऽपि कृतप्रयासो
नाशं तथा नर्मवचोभिरेति ॥७ ॥

जिस प्रकार विशुद्ध दूध सैकड़ों प्रयत्न करने पर भी थोड़ी सी अम्लता प्राप्त करके खराब हो जाता है (फट जाता है) उसी प्रकार प्रयास करता हुआ, विशुद्ध चित्त व्यक्ति भी रमणियों के नर्म वचनों के प्रभाव में आकर नष्ट हो ही जाता है ।

स्वक्षी मनोज्ञा सुदता च तन्वी,
श्यामा किशोरी नवयौवनाप्ता ।
पीनस्तना नर्मविलासदक्षा,
कस्मै न यूने हि भवेदभीष्टा ॥८ ॥

अच्छे विशाल नेत्रों वाली, मन को मोह लेने वाली, अच्छे आकर्षक दाँतों वाली, इकहरे शरीर वाली, षोडशवर्षीया, नये-नये यौवन में पदार्पण करने वाली, उभरे और कसे स्तनों वाली, काम भाव को उद्दीप्त करने वाले वचन बोलने में चतुर किशोरी बालिका भला किस युवक को अभीष्ट नहीं होगी ।

उच्चाशया मानधना युवानः
स्वमातृ-भू-गौरवगर्विता ये ।
जितेन्द्रिया बुद्धिवलान्विताश्च,
स्पृह्याः सदा ते नवयौवताय ॥९ ॥

जो युवक उच्च विचारों वाले, सम्मान को ही अपना धन मानने वाले अपनी मातृ-भूमि के गौरव पर अभिमान करने वाले, अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले, बुद्धि और बल से सम्पन्न होते हैं वे ही युवक नव युवतियों के स्पृहणीय होते हैं ।

स्वस्थो बलिष्ठः सगुणः सशक्तो,
युवा सुसभ्यः सदसद्विवेकी ।
सौम्याकृतिः शान्तसुचारुनेत्रः
कस्यै युवत्यै न भवेदभीष्टः ॥१० ॥

स्वस्थ शरीर वाला, बलवान, सद्गुणों वाला, शक्ति सम्पन्न, सुसभ्य, अच्छे-बुरे, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान रखने वाला, सौम्य आकृति वाला, शान्त स्वभाव वाला, सुन्दर आकर्षक नेत्रों वाला नवयुवक भला किस युवति को अभीष्ट न होगा ?

सदा सदाचारसरिन्निमग्नो
वृत्तं स्वकीयं परिरक्षकश्च ।
सौम्यः सुशीलो व्यसनेष्वसक्तः
कस्यै रमण्यै न भवेदभीष्टः ॥११ ॥

सदा ही सद् आचरण रूपी नदी में आकण्ठ डूबा रहने वाला अपने चरित्र की रक्षा करने वाला, सौम्य और विनम्र स्वभाव वाला, किसी भी प्रकार के व्यसनों से सदा दूर रहने वाला, युवा पुरुष भला किस रमणी का अभीष्ट न होगा ?

ये मातृभूमिं समुपासमानाः,
स्वदेशरक्षाध्वरवह्निकुण्डे
प्राणान् प्रियाञ्जुह्वति मोदमानास्
ते तु प्रशस्या युवकाः सदैव ॥१२ ॥

जो युवक अपनी मातृ-भूमि की सेवा करते हुए अपने देश की रक्षा रूपी यज्ञ के अग्नि कुण्ड में अपने प्रिय प्राणों को भी, प्रसन्न होते हुए होम कर देते हैं वे युवक तो सदैव प्रशंसनीय हुआ करते हैं।

अहर्निशं ये श्रममौक्तिकानि,
समुप्य भूमौ निजपौरुषेण।
रत्नान्यमूल्यानि समालभन्ते,
तेचापि वीरा युवकाः प्रशस्याः ॥१३ ॥

जो युवक रात दिन परिश्रम करते हुए अपने पुरुषार्थ से इस भूमि में अपने परिश्रम से आए पसीने के मोती बोते हैं और अमूल्य रत्न प्राप्त करते हैं, वे वीर युवक भी प्रशंसा करने योग्य होते हैं।

अचिन्तयन्तो निजजीवितं ये,
रुन्धन्ति शत्रून् बलपौरुषेण।
लुम्पन्त्यरीणां सबलं प्रहारान्,
तेऽपि प्रशस्या खलु भारतीयाः ॥१४ ॥

जो युवक अपने प्राणों की भी चिन्ता न करते हुए अपने बल और पौरुष से आगे बढ़ते हुए शत्रुओं को रोक देते हैं और शत्रुओं के प्रबल प्रहारों को बल पूर्वक निष्फल बना देते हैं, वे भारतीय वीर युवक भी निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं।

ये भारतं प्राणपणेन नित्यम्,
सौख्यानि दौःख्यान्यविचारयन्तः।
रक्षन्त्यजस्रं निजजीवितं वत्
सन्ति प्रशस्या ननु ते युवानः ॥१५ ॥

जो युवक अपने सुख दुःख की चिन्ता न करते हुए, अपने प्राणों की बाजी लगाकर, नित्य निरन्तर, अपने प्राणों के समान भारत वर्ष की रक्षा करते हैं निश्चय ही वे वीर युवक प्रशंसनीय है।

युयुत्सवो ये समरांगणेषु,
जिगीषवः शत्रुदलं सहेलम् ।
जिघांसवः सैन्यवलं रिपूणां
सन्ति प्रशस्याः किल ते युवानः ॥१६ ॥

जो वीर युवक युद्ध क्षेत्र में सदा ही शत्रु के साथ युद्ध करना चाहते हैं। शत्रुदल को आसानी से जीतने वाले हैं, शत्रु के सैन्य बल को नष्ट करने की इच्छा वाले हैं वे वीर युवक निश्चय ही प्रशंसनीय हैं।

दिवानिशं भीषणसंकटेऽपि
स्वमातृभूरक्षणतत्परा ये ।
रक्षन्ति नित्यं निजदेशभूमिम्,
ते चापि नूनं नितरां प्रशस्याः ॥१७ ॥

जो वीर युवक, अपनी मातृ-भूमि की रक्षा में लगे हुए, भीषण संकट के समय में भी, रातदिन निरन्तर अपने देश की भूमि की रक्षा करते हैं वे वीर युवक भी निश्चय ही अत्यन्त प्रशंसनीय हैं।

उद्योगशालासु रता युवानो
महन्ति यन्त्राणि च चालयन्तः ।
उत्पादनं ते प्रचुरं विधातुं
स्व स्वेदबिन्दून् भुवि पातयन्ति ॥१८ ॥

बड़े-बड़े कारखानों व फैक्ट्रियों में, विशाल काय महान यंत्रों (मशीनों) को चलाते हुए और उत्पादन को अधिक मात्रा में बढ़ाने के लिए, पृथिवी पर, अपने पसीने की बून्दों को कुछ युवक निरन्तर गिराया करते हैं।

अपाम्पति र्वा हिमवान्महोच्च,
उद्योगशाला समरांगणं वा ।
क्षेत्राणि, सीमा, नगराणि वा स्युस्
तेजांसि यूनां विचरन्ति तत्र ॥१९ ॥

समुद्र हो अथवा महान ऊंचा हिमालय हो, उद्योग शाला हो अथवा युद्ध भूमि, खेत हों, देश की सीमा हो अथवा नगर हों, युवकों का तेज सभी जगह दिखाई देता है।

दृढप्रतिज्ञैः कृतनिश्चयैश्च
प्रयत्नशीलैश्च चरित्रवद्भिः ।
निष्पापचित्तै मृदुभाषिभिश्च,
ध्रुवा प्रतिष्ठा किल लभ्यतेऽत्र ॥२० ॥

दृढ़ प्रतिज्ञा वाले, अटल निश्चय वाले, प्रयत्नशील, अपने चरित्र की रक्षा करने वाले, पवित्र चित्त वाले, मधुर बोलने वाले युवक इस लोक में, कभी न नष्ट होने वाले सम्मान को अवश्य ही प्राप्त करते हैं ।

कार्यन्त्वसाध्यं न हि किञ्चिदस्ति,
चेद्यत्नशीलस्तु नरो भवेद्धि ।
आकाशभूमीसलिलान्यतीत्य,
लक्ष्यं स्वकं साधयति प्रवीरः ॥२१ ॥

इस संसार में कोई भी कार्य असाध्य नहीं है यदि मनुष्य प्रयत्नशील है तो युवा वीर मनुष्य तो आकाश, भूमि और जलों को भी पार करके अपने लक्ष्य को साध ही लेता है ।

हिमालयस्योच्चतमं गरिष्ठम्,
यदैवरेस्टेति भुवि प्रसिद्धम् ।
तत्कष्टसाध्यं शिखिरं समोदम्,
विजित्य कीर्तिं दुदुहुर्युवानः ॥२२ ॥

हिमालय पर्वत के उच्चतम, कष्ट साध्य, कठिन शिखर को, जो सारे भूतल पर 'एवरेस्ट' नाम से प्रसिद्ध है, उसे प्रसन्नता पूर्वक विजय करके अपनी अक्षय कीर्ति कमाने वाले युवक ही थे ।

भूत्वा दृढांगा युवका अनेके,
सुमल्लविद्यागुणकौशलेन ।
मल्लाननेकान् परदेशमान्यान्,
विस्तारयन्तिस्म यशो विजित्य ॥२३ ॥

वज्र के समान दृढ अंगों से सम्पन् अनेक युवकों ने अपनी मल्लविधारक (पहलवानी) गुण और कौशल से दूसरे देश के अनेक सम्मानित पहलवानों को जीत कर अपने देश भारत के यश को दूर-दूर तक फैलाया ।

सत्यं युवानो न हि ते युवानो,
ये मार्गरोधानवलोक्य लोके।
कर्तव्यमूढा विमुखाः स्वलक्ष्यात्,
प्रारब्धकार्यं विजहत्यपूर्णम् ॥२४॥

यह बात सत्य है कि वे युवक, युवक ही नहीं हैं जो अपने मार्ग में आए अवरोधों को देखकर अपने लक्ष्य से विमुख हुए, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के विषय में मूढ बने अपने प्रारम्भ किए हुए कार्य को अपूर्ण ही छोड़ बैठते हैं।

सम्भावितं विघ्नभयं विभाव्य,
श्रेष्ठाः सदुत्साहभरा युवानः।
लौकैर्यदुक्तं कठिनं सुकर्म,
कुर्वन्ति ते तच्च, भवन्ति सिद्धाः ॥२५॥

उत्तम श्रेणी वाले, सदुत्साह से भरे हुए, नवयुवक, भविष्य में होने वाले कार्यों में विघ्नों के भय की सम्भावना करके उन्हीं कर्मों को करते हैं जो अन्य साधारण मनुष्यों के द्वारा कठिन कहे जाते हैं और उन कार्यों में वे सदा ही सफल होते हैं।

ये मध्यमास्ते निजकार्यजात,-
मुत्साहभावेन सदाऽऽरभन्ते।
परन्तु मार्गागतविघ्नखिन्ना
लक्ष्यात् स्वकीयाद् विरमन्ति मध्ये ॥२६॥

जो युवक मध्यम श्रेणी के होते हैं वे सदा ही अपने कार्यों को बड़े उत्साह भाव से प्रारम्भ करते हैं परन्तु कार्य के पूरा करने के मार्ग में आए विघ्नों से खिन्न हुए वे अपने निर्धारित लक्ष्य को मध्य में ही छोड़ बैठते हैं।

नीचाशया विघ्नभयाद् युवानः
समारभन्ते न कदापि कार्यम्।
सम्प्रेरितास्ते बहुशोऽपि चान्यैः,
कार्यं विधातुं ननु नोत्सहन्ते ॥२७॥

अधम श्रेणी के नीचाशय युवक विघ्नों के भय से कार्य को प्रारम्भ ही नहीं करते। दूसरों से अनेक प्रकार से प्रेरित किए जाते हुए भी वे अपने कार्य को पूरा करने के लिए कभी भी, किसी भी प्रकार का उत्साह नहीं दिखाते।

स्वदेशनिष्ठा युवका बलिष्ठा,
नावं विशालां जलघातशीर्णाम् ।
विपन्नदीनीरनिमग्नभूताम्,
सत्पौरुषेणैव नयन्ति तीरम् ॥२८ ॥

स्वदेश के प्रति निष्ठा रखने वाले, बलशाली युवक, जल के आघातों के कारण कमजोर हुई स्वदेश की विशाल नाव को जो विपत्ति रूपी नदी के जल में डूब सी ही गई हैं, उसे अपने सबल पौरुष से किनारे तक ले ही आते हैं ।

तारुण्यकाले बहवो युवानः,
स्व ब्रह्मरक्षां समुपेक्ष्य मूढाः ।
दारक्रियायोग्यदशामलब्ध्वा,
कुसंगतिं प्राप्य भवन्ति रिक्ताः ॥२९ ॥

बहुत से नवयुवक तरुण अवस्था में ही अपने ब्रहाचर्य व्रत की उपेक्षा करके और भली प्रकार परिपक्व दशा को भी न पहुँचकर कुसंगति में फँस कर, मूर्ख बने, पूर्ण रूप से खोखले ही हो जाते हैं ।

तेजोविहीना न च पुष्टगात्राः,
प्रसाधनैः कृत्रिमकान्तिकान्ताः ।
विकुञ्चिताक्षाः पुरुषार्थहीना,
भ्रमन्ति मन्ये मदनावताराः ॥३० ॥

तेजस्विता से क्षीण, अस्वस्थ एवं अपुष्ट शरीर वाले, क्रीम, पाउडर आदि बनावटी प्रसाधनों से अपनी झूठी चमक दमक बनाने वाले, गड्ढों में धँसी आखों वाले, पुरुषार्थहीन युवक इस प्रकार बन ठनकर घूमते हैं मानो वे कामदेव के ही अवतार हों ।

दावानलो दारुचयं सधूमम्,
करोत्यजस्रं ननु नामशेषम् ।
परन्तु कामाग्निलवोऽपि यूनश्
चान्तर्गतो दाहयति प्रकामम् ॥३१ ॥

दावानल तो काष्ट समूह को निरन्तर धुएँ सहित जलाकर राख कर देती है परन्तु काम भावना की अग्नि की एक छोटी सी चिन्गारी भी अन्दर ही अन्दर छिपी हुई युवकों को निरन्तर जलाया करती है ।

स्व पंचबाणैस्तु स पंचबाणस्
तान्विध्यति प्राणपणेन नित्यम् ।
ये सन्ति दासास्तु निजेन्द्रियाणाम्,
येषां च चित्तानि न हि स्थिराणि ॥३२ ॥

वह काम देव, हठ पूर्वक, अपनी पूरी शक्ति से, उन युवकों को नित्य ही अपने पंच बाणों से बींधता रहता है जो अपनी इन्द्रियों के दास होते हैं और जिनके चित्त स्थिर नहीं होते ।

तारुण्यकम्रं नवयौवतं वै,
विलोलनेत्रं चपलं विलोक्य ।
क ईदृशः स्याद् युवको रसज्ञो
यो नाप्नुयान्मारविकारभावम् ॥३३ ॥

तरुण अवस्था के कारण सुन्दर, चंचल नेत्रों वाले, चपल नवयुवतियों के समूह को सामने देखकर, यौवन के रस का स्वाद चखने वाला, कौन ऐसा युवक होगा जो काम देव के प्रभाव से प्रभावित न होता हो ।

धीरस्वभावोऽपि युवा कदाचिद्
विशुद्धचित्तां तरुणीं सुरुपाम् ।
विलोक्य काञ्चिद्धि विलोलनेत्राम्,
हात्वात्मशान्तिं सुखमेति नाऽत्र ॥३४ ॥

कभी-कभी धीर स्वभाव वाला नव युवक भी, चंचल नेत्रों वाली, सुरुपवती, विशुद्ध चित्त वाली किसी तरुणी को देखकर अपनी शान्ति को खोकर रंचमात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर पाता ।

यथा युवानोऽपि तथा युवत्यो
भवन्ति नूनं मदनार्तचित्ताः ।
तारुण्यतप्तानलदग्धदेहास्
तथा चरन्तीह यथा युवानः ॥३५ ॥

जिस प्रकार नव युवक कामभाव से व्याकुल चित्त वाले हुआ करते हैं उसी प्रकार युवतियाँ भी निश्चित रूप से काम भाव से आर्त चित्तवाली हुआ करती हैं। यौवन की तप्तानल के दग्ध शरीर वाली युवतियाँ भी वैसा ही आचरण करती हैं जैसा आचरण युवक करते हैं

अस्त्यत्र दोषो नितरां न यूनाम्,
तासाञ्च दोषोऽपि न कश्चिदल्पः ।
विनग्नदेहा गतशीललज्जा
अर्धावृत्तांगा बिहरन्ति पुंसु ॥३६ ॥

इन बातों में केवल युवकों का ही दोष हो ऐसा नहीं । उन युवतियों का भी कुछ कम दोष नहीं है जो नग्नदेह, शील और लज्जाहीन, अर्धनग्न अंगों वाली, मनुष्यों के बीच में घूमती फिरती हैं ।

ये ब्रह्महीनाः पुरुषार्थदीनास्
तेजोविहीना मलिनस्वभावाः ।
सद्वृत्तहीना अजितेन्द्रियाश्च,
ते निन्दनीया युवकाः सदैव ॥३७ ॥

जो युवक ब्रह्मचर्य से हीन, पुरुषार्थ रहित, तेज और कान्ति से विहीन, मलिन स्वभाव वाले सदाचार से हीन और अजितेन्द्रिय होते हैं वे युवक सदा ही निन्दनीय होते हैं ।

सौम्याः सुशीलाः पुरुषार्थदक्षाः
सद्वृत्तलीना विजितेन्द्रियाश्च ।
नम्रस्वभावा युवका उदाराः
केषां जनानां न हि वन्दनीयाः ॥३८ ॥

शान्त और सुन्दर आकृति वाले, सुन्दर स्वभाव वाले, सफल पुरुषार्थी अच्छे आचरण वाले, अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले विनम्र स्वभाव वाले, उदार युवक भला किन के वन्दनीय नहीं हो जाते ?

उच्छृंखलो धूर्तयुवा निकृष्टः,
स्वच्छन्दचारी च विवेकशून्यः ।
कुसंगसेवी च कुमार्गगामी,
गुरुँश्च वृद्धाँस्तुदते सदैव ॥३९ ॥

किसी मर्यादा को न मानने वाला, बिना किसी रोक-टोक के जहाँ चाहा वहाँ, जैसा चाहा वैसा आचरण करने वाला, सत् असत् का विचार न करने वाला, कुसंगति में रहने वाला, कुमार्ग पर चलने वाला, नीच धूर्त युवक अपने गुरुजनों व वृद्धजनों को सदा सताया ही करता है ।

आचारहीना . मदनेषुविद्धाः
स्वच्छन्दशीला व्यसनैरहीनाः ।
गतत्रपा इन्द्रियभोगसक्ताः
श्वानो यथाऽटन्ति तथा भ्रमन्ति ॥४० ॥

भ्रष्ट आचरण वाले, काम देव के वाणों से आहत इधर-उधर ताक-झाक करने वाले, जैसा चाहा वैसा करने की आदत वाले, अनेक व्यसनों में फँसे हुए, निर्लज्ज, इन्द्रियों के भोगों में ही सदा आसक्त रहने वाले कुछ नव युवक, समाज में इस तरह से घूमते हैं जैसे कुत्ते घूमा करते हैं ।

उच्छृंखला यौवनसर्पदंष्टा,
दुष्टस्वभावा युवका मदान्धाः ।
वालाः कुलीनाः पथि वर्तमाना
दृष्ट्वा दुरुक्तीः प्रवदन्ति धूर्ताः ॥४१ ॥

जवानी रूपी सर्प से डसे हुए, मर्यादाहीन, मद से अन्धे बने दुष्टस्वभाव वाले, धूर्त युवक, कुलीन बालाओं को मार्ग में आती जाती देखकर अशोभनीय बातें कहा करते हैं ।

श्रद्धास्पदं मातृपदं ह्युपेक्ष्य,
विहाय मर्याञ्च निजान्वयस्य ।
विस्मृत्य मार्गं गुरुपूर्वजानाम्,
नीचा युवानः प्रवदन्ति मिथ्या ॥४२ ॥

नीच युवक ही श्रद्धा करने योग्य मातृ पद की उपेक्षा करके और अपने कुल की मर्यादा को छोड़कर तथा अपने गुरुजनों व पूर्वजों के मार्ग को त्याग कर अशोभनीय बातें बका करते हैं ।

हा ! हा ! प्रिये ! त्वं हृदयेश्वरी मे
प्राणा इमे मे तव सन्ति दासाः ।
उपेक्ष्य मां त्वं वद ! यासि कुत्र ?
ते बल्लभोऽहं समुपस्थितोऽत्र ॥४३ ॥

हाय ! हाय ! मेरे दिल की रानी ! मेरी प्यारी ! मेरी यह जान तेरे लिए दास की तरह हाजिर है । बोल तू मुझे छोड़कर किधर जा रही है ? तेरा चाहने वाला तो इधर खड़ा है ।

याचेः प्रिये ! त्वं मम जीवितं माम्
तद्दातुकामो न हि कापि चिन्ता ।
रुष्टा कथं त्वं मयि नानुरक्ता,
स्वदृष्टिपातं न कथं करोषि ? ॥४४ ॥

हे मेरी प्रिये ! यदि तू मुझसे मेरे प्राण भी माँगे तो मैं बिना किसी चिन्ता के वे भी तुझे देने के लिए तैयार हूँ । मेरे से क्यों नाराज हो ? मुझसे प्रेम क्यों नहीं ? मुझ पर अपनी प्यार की दृष्टि क्यों नहीं डाल रहीं ?

यदा कदा कापि कुलीनकन्या
क्वचित्प्रयान्ती पथि हीनवृत्तान्
विलोक्य धूर्तान् हरिणीव भीता,
मार्गं ह्यपास्य स्थलमन्यमेति ॥४५ ॥

जब कभी कोई कुलीन कन्या कहीं जाती हुई मार्ग में चरित्रहीन नालायक (गुण्डे/दादा) युवकों को देखती है तो वह भयभीत मृगी के समान, उनका मार्ग छोड़कर, एक तरफ को दूसरे स्थान पर चली जाती है ।

मत्वा स्वकं कामकुलावतंसम्,
धत्ते धरायां न पदं विमूढः ।
शक्तः प्रयातुं न पदं तथाऽपि,
धृष्टः सदा यात्यनुयौवतम् सः ॥४६ ॥

अपने आपको काम देव के कुल में जन्म लेने वाला मानकर अपने आप में फूला हुआ, दुष्ट नवयुवक, धरती पर पैर न रखता हुआ अपनी कमाजोरी के कारण एक कदम भी ठीक से न चल सकने योग्य होता हुआ भी सदा युवतियों का पीछा किया करता है ।

तद् यौवतेनैव समाजमध्ये,
प्रताडितोऽसौ निजपाददासैः ।
उपस्थितै र्दर्शकवृन्दमुख्यैः
प्रताडनोपायनभूषितोऽ भूत् ॥४७ ॥

पीछा की जाती हुई, उसी युवती के द्वारा भरे समाज में वह मजनू, चप्पलों से पीटा जाता है और उपस्थित दर्शकों में से भी कुछ प्रमुख व्यक्तियों के द्वारा प्रताडना रूपी उपहारों से उसे विभूषित किया जाता है ।

मातृत्वभावः परदारवृन्दे,
तासां प्रतिष्ठा गुणगौरवञ्च ।
एते गुणा आधुनिकैः किशोरैस्
त्यक्ताः समस्ता युवकैरशिष्टैः ॥४८ ॥

दूसरों की स्त्रियों में मातृत्व का भाव, उनकी प्रतिष्ठा और गुण-गौरव आदि ये सभी गुण आधुनिक अशिष्ट किशोरों और युवकों द्वारा त्याग दिए गए हैं ।

या कृष्णवर्णाऽपि च हीनवर्णा,
चेत्साभवेद् वामनतुल्यदेहा ।
सा चैव भूत्वा ननु षोडशीया,
तारुण्यतप्ता प्रतिभाति रम्भा ॥४९ ॥

जो श्याम रंग वाली है और नीच वर्ण की है, चाहे वह कद में ठिगनी ही क्यों न हो, वहभी सोलह वर्ष की हो जाने पर तरुण अवस्था को प्राप्त हुई, अपने लावण्य के कारण 'रम्भा' के समान सुन्दर प्रतीत होने लगती है ।

यथा यथायुर्भजते प्रकर्षम्,
तथा तथैव स्तनभारवृद्धिः ।
कुचप्रवृद्धिं ह्यवलोक्य मुग्धा,
तच्छादने व्यग्रतरा सदैव ॥५० ॥

जैसे-जैसे तरुणी की आयु बढ़ती है वैसे ही वैसे उसके स्तन भी भारी होते जाते हैं । अपने स्तनों की प्रवृद्धि देखकर, वह भोली-भाली तरुणी अपने उन कुचों को ढकने में और अधिक व्यग्र व सावधान होती चली जाती है ।

यथा यथा मादनराज्यसत्ता
शनैः शनैः प्रौढदशामुपैति ।
तथा तथा मारनिवासकेतू
दूराद्धि यूनां हरतो मनांसि ॥५१ ॥

जैसे-जैसे कामदेव के राज्य का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे कामदेव के निवास स्थल के झण्डे दूर से ही युवकों के मन हरने लगते हैं ।

कश्चिद् युवा मन्मथवाणघातैर्
भूत्वाऽऽहतः कामयते पुनस्ताम्।
प्रेक्ष्यां प्रियां प्रेमपयोधिमग्नो
दिदृक्षते तां पुनरब्जनेत्राम् ॥५२॥

काम देव के वाणों के प्रहारों से आहत होकर भी कोई कोई युवक फिर दोबारा उन्हीं वाणों की चोट सहने की कामना करता है। प्रेम के पयोधि में आकण्ठ डूबा हुआ कोई युवक कमल जैसे नेत्रों वाली अपनी दर्शनीय प्रिया को बार-बार देखना चाहता है।

चित्ते निविष्टां नितरामलभ्याम्,
ज्ञात्वाऽपि तां सर्वविधं विमूढः।
रात्रौ न निद्रां न दिने च शान्तिम्,
अवाप्य खिन्नो विजहाति सौख्यम् ॥५३॥

किसी भी तरह प्राप्त न हो सकने योग्य, अपने चित्त में वसाई हुई उस रमणी को, सुलम न जान कर भी, उस पर आसक्त हुआ मूढ युवक, रात में नीद व दिन में चैन न पाकर, खिन्न हुआ अपने सभी सुखों को त्याग बैठता है।

ध्यायन् कदाचित्तदलभ्यगात्राम्,
निवेश्य चित्रेऽपि च तोषमेति।
पिस्पृक्षया चित्रगतामभीष्टाम्
मत्वा सजीवां लपते विमूढः ॥५४॥

जिसके शरीर को कभी छू पाना भी असम्भव है, कभी उसका ध्यान करते हुए और कभी उसे चित्त में रखकर सुख का अनुभव करता है। कभी चित्रगत अभीष्ट प्रिया को सजीव मान कर ही वह मूढ युवक उससे न जाने क्या-क्या बात किया करता है।

स्वस्मिन् विरक्तामपि चानुरक्ताम्,
स्वप्नागतां तामनुमत्य सत्यम्।
स्वांकागतां तां तु विधित्सयाऽसौ,
बाहू स्वकीयौ वितनोति शून्ये ॥५५॥

अपने से प्रेम न करने वाली को, स्वप्न में आने वाली रूपसी को अपने प्रति सच में ही अनुरक्त मानकर उसे अंक में भरकर अपनी छाती से लगाने की इच्छा से वह कामुक युवक अपनी दोनों भुजाएँ आकाश में फैला देता है।

स्वाभीष्टपात्रं किल दर्शनाय,
ज्ञातुं हि तन्नेत्रगतं विकारम्।
उभौ च तौ द्वौ मदनार्तचित्तौ
मोदं भजेते हि मिथो विलोक्य ॥५६॥

अपने प्रिय पात्र को देखने के लिए और उनके नेत्रों के भावों को जानने के लिए काम देव के प्रभाव के कारण व्याकुल चित्त वाले वे दोनों एक दूसरे को देखकर आनन्दित होते हैं।

स्वाभीष्टसिद्धिं त्वनवाप्य कश्चित्
प्राणान् मुमुक्षु र्ग्रसते विषं वै।
जग्ध्वाऽपि तत्प्राप्य मृतिं युवा च,
प्रियाममीष्टामुपयाति नैव ॥५७॥

कोई-कोई युवा प्रेमी तो अपनी इच्छित प्रेमिका को न पाकर अपने प्राणों को त्याग देने की इच्छा वाला जहर भी खा लेता है। वह प्रेमी युवक जहर को खाकर, मौत को गले लगाकर भी अपने उस इच्छित प्रेमिका के पास तक नहीं पहुँच पाता।

अनाप्तलक्ष्यो युवको निराशः
प्राणान् यथा स्वान् विजहाति मूढः।
तथा हताशो युवतीसमाजः
स्व जीवनञ्चापि जहाति लोके ॥५८॥

अपनी अभीष्ट प्रेमिका की प्राप्ति के लक्ष्य में निराश हुआ मूर्ख युवक जिस प्रकार अपने प्राण त्याग देता है उसीप्रकार अपने अभीष्ट प्रेमी को न पाकर हताश हुआ युवती समाज भी अपने जीवन को त्याग देता है।

तेजोविहीना युवकाः युवत्यो-
दृढां प्रतिष्ठाञ्च महन्महत्वम्।
नागृह्णते ते तु विषण्णचित्ताः,
सदा समाजेऽपकृतिं लभन्ते ॥५९॥

तेज विहीन बहुत से युवक, युवतियाँ यथोचित सम्मान व महत्व नहीं ले पाते तो वे उदासचित हो जाते हैं और समाज में अपमान ही प्राप्त करते हैं।

स्वाभीष्टपात्रं युवकस्तु कश्चिद्
अवाप्य काण्डे भजते प्रमोदम् ।
स मन्यते यत् 'सुखमैन्द्रमाप्तम्'
धन्यस्तथाऽन्यो न यथाऽस्मि धन्यः ॥६० ॥

कोई युवक तो अपनी अभीष्ट प्रेमिका को समय पर पाकर प्रसन्नता अनुभव करता है । उस उपलब्धि को वह 'स्वर्ग की प्राप्ति के सुख के समान मानता है और वह समझता है कि मैं जितना धन्य हूँ उतना कोई दूसरा युवक धन्य नहीं है ।

स प्रेमपात्रे रमते तथैव,
स्वर्गस्थवालासु यथा सुरेन्द्रः ।
न वेत्ति रात्रिं न स वेत्ति भानु-
मवर्णनीयं च सुखं भुनक्ति ॥६१ ॥

अपनी अभीष्ट प्रेमिका को पाकर वह युवक अपनी प्रेमिका में इस प्रकार रमण करता है जिस प्रकार स्वर्ग लोक में रहने वाली अप्सराओं में सुरेन्द्र रमण करता है । प्रेमान्ध वह प्रेमी युवक न रात देखता है न दिन, वह तो रात दिन अवर्णनीय सुख का आनन्द लेता रहता है ।

अतृप्तकामोऽधरपानसक्तः,
पुनः पुनश्चुम्बति गण्डभागम् ।
विलासलीलासुखपूर्णपाकः
कामान्धजीवै र्ननु दृश्यते न ॥ ६२ ॥

अतृप्त कामवासना वाला, प्रेमिका के अधर पान में डूबा हुआ अपनी प्रेमिका के दोनों कपोलों को बार-बार चूमता है । नारी विलास की लीला के सुख का अन्तिम परिणाम कामान्ध व्यक्तियों की दृष्टि में आता ही नहीं ।

परस्पराऽभिज्ञजनौ कदाचित्
द्वौ मन्त्रयेते तु मिथो न किं किम् ?
परस्परालापरसाब्धिमग्नौ,
वित्तो न रात्रिः क्व गता कदा च ॥६३ ॥

कभी तो एक दूसरे से अपरिचित दो (पति-पत्नी) व्यक्ति न जाने क्या-क्या अन्तहीन बातें किया करते हैं कि परस्पर वार्तालाप के रस रूपी सागर में डूबे हुए वे दोनों यह भी नहीं जान पाते कि रात्रि कब और कहाँ चली गई ।

जलाशयं प्राप्य तृषार्तजीवा-
द्वाभ्यां कराभ्यां सलिलं पिबन्ति।
परं क्षुधार्तो न कदापि कोऽपि
भुङ्क्ते कराभ्यां स्वदनं ह्यभीष्टम् ॥६४॥

प्यास से व्याकुल मनुष्य स्वच्छ जल वाले नदी, तालाब अथवा झरने के पास पहुँच कर दोनों हाथों से जल पीता है। यह बात तो ठीक है परन्तु कोई भी भूखा व्यक्ति, अपना इच्छित प्रिय भोजन प्राप्त करके भी दोनों हाथों से कभी नहीं खाता।

यः कोऽपि भुंक्ते स्वदनं कराभ्याम्,
नाऽसौ नरो नैव वनेचरश्च।
स राक्षसो वा पिशिताशनो वा,
जानन्ति मर्यां मनुजा, न पापाः ॥६५॥

जो कोई भी अपने भोजन को दोनों हाथों से खाता है वह निश्चित ही न तो कोई मनुष्य है और न कोई वन में विचरण करने वाला कोई पशु ही। वह तो कोई कच्चा मांस खाने वाला या कोई राक्षस ही होगा क्योंकि मर्यादा का पालन मनुष्य ही करते हैं, पापी राक्षस नहीं।

देशे स्वतन्त्रे खलु भारतेऽस्मिन्,
स्वजीविकोपार्जनवृत्तिहीनाः।
स्वस्था बलिष्ठा युवका अनेके,
व्यर्थं स्वशक्तिं गमयन्ति नित्यम् ॥६६॥

अपने इस स्वतंत्र देश भारत में, अपनी जीविका के उपार्जन के लिए भटकते हुए, बिना नौकरी वाले, स्वस्थ और बलिष्ठ अनेक युवक अपनी शक्ति को बेकार ही नष्ट कर रहे हैं।

अशिक्षिताश्चापि सुशिक्षिताश्च,
स्वजीविकाप्राप्तिपरायणाश्च।
स्ववृत्तिहीना बहुशो युवानो
देशे हताशा नितरामटन्ति ॥६७॥

अशिक्षित और अच्छी शिक्षा प्राप्त किए हुए, अपनी जीविका प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए, बिना किसी वृति के बहुत से नवयुवक, देश में निराश हुए व्यर्थ ही इधर-उधर भटक रहे हैं।

यत्रापि कुत्रापि गता भवेयु;
पश्यन्ति ते तत्र विशालपट्टे ।
दीर्घाक्षरेष्वंकितमेकवाक्यम्,
'नास्त्यत्र रिक्ति:' प्रतियान्तु गेहम् ॥६८ ॥

बेरोजगार युवक जहाँ कहीं भी जाते हैं वहीं वे लम्बे चौड़े विशाल बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षरों में एक ही वाक्य लिखा पाते हैं—'कोई रिक्ति नहीं' (नो वेकेंसी) अपने घर लौट जाओ ।

चेत्कापि रिक्ति र्भवति क्वचित्तु
तां तत्र रिक्ति विविधै: प्रकारै: ।
यूनां सहस्रं निजयोगहीनास्
तदाप्तये ते बलवद् यतन्ते ॥६९ ॥

यदि कहीं पर कोई जगह खाली भी होती है तो उस एक रिक्ति को तरह-तरह के हथकण्डों से बेरोजगार हजारों युवक, जैसे भी हो वैसे बलपूर्वक प्राप्त करने प्रयत्न करते हैं ।

विधायकानामपि सांसदानाम्,
पत्राण्यनेकान्यपि संस्तुतीनाम् ।
कार्याणि यूनां वहुपीडितानाम्,
न साधयन्तीह बिना प्रदानै: ॥७० ॥

बेरोजगार पीड़ित युवकों के कार्य विधायकों व सांसदों के अनेक संस्तुति (सिफारिश) पत्र भी बिना कुछ दिए सिद्ध नहीं कर पाते ।

नियोगहीनान् युवकानकेकान्,
नियोजकास्ताँस्तु नियुक्तिहेतो: ।
प्रागेव सर्वे कृतकर्मयोगा:
आडबरायैव समाह्वयन्ति ॥७१ ॥

अनेक बेरोजगार युवकों को, पहले से ही ले देकर काम पूरा कर लेने वाले मालिक लोग, नौकरी देने के निमित्र साक्षात्कार के लिए दिखावे के लिए ही बुलाते हैं ।

कार्यक्षमाणां निजदेशयूनां
शक्तिर्विशिष्टा सृजनाय या स्यात् ।
सा त्वेव देशे विविधैः प्रकारैर्
विध्वसंनायैव हि कल्पिताऽत्र ॥६२ ॥

कार्य करने में सभी तरह समर्थ, देश के नवयुवकों की विशिष्ट शक्ति जो सृजन के कार्यों में लगनी चाहिए, वही शक्ति आजकल इस देश में विध्वंसक कार्यों में प्रयोग की जा रही है ।

दिने-दिने पूज्यमहाजनानां
तपःप्रभावो क्षयतां प्रयाति ।
अतः स्वदेशे सुख-शान्ति-राज्यम्,
न वेत्ति कश्चित् क्व गतं विलीनम् ॥७३ ॥

भारत वर्ष में अपने पूज्य महापुरुषों के तप का प्रभाव धीरे-धीरे प्रतिदिन घटता ही जा रहा है । इसीलिए अपने देश के सुख और शान्ति का राज्य कहाँ चला गया, कोई नहीं जानता ।

देशेऽस्मदीये कथमस्त्यशान्तिः, ?
किं कारणं ज्ञेयमिदंसुविज्ञैः ।
विचारणीयञ्च निदानमस्यास्,
ततः समेत्य प्रतिरोधनीयम् ॥७४ ॥

अपने इस देश भारत में अशान्ति क्यों है ? इस अशान्ति का क्या कारण है ? सभी योग्य विज्ञ जनों को इस बात का पता लगाना चाहिए और इसका निदान ढूँढना चाहिए । फिर सब को मिलकर उसका एक साथ प्रतिरोध करना चाहिए ।

विलोक्य देशे प्रबलामशान्तिम्,
विद्वेषहिंसाऽनलजायमानाम् ।
प्रतीयते यन्नु शान्तिदेवी,
हात्वा स्वदेशं क्वगता न विद्मः ॥७५ ॥

परस्पर विद्वेष भाव और हिंसा रूपी अग्नि से उत्पन्न प्रबल अशान्ति को देखकर देश में ऐसा लगता है कि निश्चित ही शान्ति देवी भारत देश को त्याग कर कहीं और चली गई है । जिसे हम नहीं जानते ।

या सद्गुणोद्भूतमहाप्रशान्तिर्
यत्रापि कुत्रापि करोति वासम् ।
यशः सुकीर्तिश्च समृद्धिकोषः,
सौहार्दभावेन वसन्ति तत्र ॥७६ ॥

सद्गुणों से उत्पन्न महाप्रशान्ति जहाँ कहीं भी निवास करती है यश, सुकीर्ति और सम्पन्नता का कोश परस्पर मित्रता और सौहार्द के साथ निवास करते हैं ।

राजन्त एवात्र तु यत्र तत्र,
क्रौर्यं च धौर्त्यं परवञ्चनञ्च ।
दौष्टयञ्च शाठ्यं परहिंसनञ्च,
स्वाभीष्टसिद्धिः परनिन्दनञ्च ॥७७ ॥

इस समय भारत वर्ष में तो जहाँ तहाँ क्रूरता धूर्तता और दूसरों के साथ धोखा धड़ी करना, दुष्टता, शठता और दूसरों की हत्या कर देना, स्वार्थ सिद्धि एवं दूसरों की आकरण निन्दा ही मिलने लगी है ।

तीर्थेषु पुण्येषु महीधरेषु,
ग्रामेषु चैत्येषु च मन्दिरेषु ।
गृहे-गृहे चापि जने-जने च,
न शान्तिभावः क्वचिदस्ति देशे ॥७८ ॥

आज कल भारत देश में तीर्थ स्थानों पर, पवित्र स्थलों पर बड़े-बड़े पर्वतों पर, गाँवों में चैत्य भूमियों में, मन्दिरों में घर-घर में और जन-जन में शान्ति का भाव कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है ।

कस्यापि देशस्य समृद्धिभावो,
यशः प्रतिष्ठा गुणगौरवञ्च ।
स्थैर्यं प्रशक्तिः प्रभुता च मानः,
क्षिप्तं हि सर्वं नवयौवने तु ॥७९ ॥

किसी भी देश की सुख सम्पन्नता, यश प्रतिष्ठा गुण एवं गौरव स्थिरता, शक्ति, प्रभुता एवं मान-सम्मान सब कुछ देश के नव युवकों में ही निहित होता है ।

सोढ्वापि शीतातपकष्टजालम्,
कर्त्तव्यमार्गाद् विचलन्ति ये न।
ये शान्तशीलाः श्रमशक्तिनिष्ठास्
ते भुञ्जते मातृभुवः प्रसादम् ॥८० ॥

जो व्यक्ति ठण्ड गर्मी और अन्य अनेक कष्टों को झेलकर भी अपने कर्त्तव्य मार्ग से विचलित नहीं होते और जो शान्त स्वभाव व परिश्रम में विश्वास करते हैं वे ही मातृ-भूमि के प्रसाद को चखते हैं।

वसुन्धरायास्तु पयः प्रसादम्,
ते स्वादयन्ति प्रपिपासवो ये।
ये निष्क्रियाः सन्त्यदुधुक्षवस्ते,
मिष्टं पयो नैव पिबन्ति मूढाः ॥८१ ॥

धरती माता के दूध/पानी के तत्व का आस्वादन वे ही लोग किया करते हैं जो सच्चे अर्थों में प्यासे हुआ करते हैं। जो निष्क्रिय हुआ करते हैं वे वास्तव में पृथ्वी का दोहन करने वाले नहीं होते और वे ही मूढ जन भूमि के मधुर दूध/पानी का पान नहीं कर पाते।

यथा यथा भारतदेशभागे
प्रवर्धते मानवजन्मसंख्या।
तथा समस्या सुरसाऽपि नित्य-
मास्यं स्वकीयं बितनोत्यनन्तम् ॥८२ ॥

इस पूरे भारत में जैसे-जैसे मनुष्यों की जन्म दर बढ रही है, वैसे ही वैसे समस्या रूपी सुरसा भी नित्य प्रति अपने अनन्त विस्तार वाले मुख को फैलाती ही जा रही है।

यत्ना अनेके प्रतिरोद्धुमेनाम्
जनैः प्रबुद्धैर्खलु शासकैश्च।
नित्यं क्रियन्ते सुतरां तथापि,
देशे समस्याः प्रविवर्धमानाः ॥८३ ॥

भारत देश के प्रबुद्ध नागरिकों एवं शासकों द्वारा जनसंख्या वृद्धि की समस्या को हल करने एवं इसके प्रतिरोध करने के नित्य ही अनेक उपाय किए जा रहे है। फिर भी देश में अनेक समस्याएँ नित्य प्रति बढ़ती ही जा रही हैं।

महाविशालं निजदेशवृक्षम्,
शिक्षाप्रसारागतविघ्नजातम् ।
दारिद्र्यविद्वेषघृणाश्च हिंसा
छिन्दन्ति नित्यं हि समूलमेनम् ॥८४ ॥

अपने देश के प्रगति-रूपी महाविशाल वृक्ष को नित्ये प्रति जड़ से, शिक्षा के प्रसार में आने वाले अनेक विघ्न, बाधाएँ, दरिद्रता, विद्वेष घृणा और हिंसा, काट रही हैं।

सत्यञ्च धैर्यं करुणा विवेकस्
त्यागः सदाचारगुणो विशेषः ।
औदार्यभावश्च सहानुभूतिः,
क्व क्व प्रयाता न तु वेत्ति कोऽपि ॥८५ ॥

इस भारत देश में से सत्य, धैर्य, करुणा, विवेक, त्याग, सदाचार रूपी विशेष गुण, उदारता एवं सहानुभूति न जाने कहाँ-कहाँ चले गए, इस बात को कोई नहीं जानता।

ईर्ष्याघृणाद्वेषविरोधभावा-
हिंसा बुभुक्षा च परापमानः ।
उत्कोचवृत्तिः परवञ्चनञ्च,
कृन्तन्ति देशस्य विकासवृक्षम् ॥८६ ॥

इस देश के विकास रूपी वृक्ष को, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, परस्पर विरोध, हिंसा, भूख और दूसरों का अपमान, घूस (रिश्वत) लेने की प्रवृत्ति और धोखा धडी निरन्तर काट रहे हैं।

नैकाः समस्या उरगीव दुष्टास्
तिष्ठन्ति देशे विवृतानना वै ।
स्वातन्त्र्यसौख्यं गरितुं त्वरन्ते,
ता वाधनीयाः श्रममन्त्रतन्त्रैः ॥८७ ॥

दुष्ट सर्पिणी की तरह अनेक समस्याएँ इस देश में मुँह खोले चारों तरफ खड़ी हैं और वे हमारी स्वतन्त्रता के सुख को निगल जाने के लिए तेजी से बढ़ रही हैं। उन्हें परिश्रम रूपी मन्त्र-तन्त्र से सभी प्रकार वश में किया जाना चाहिए।

श्रेष्ठा यथाचारपरायणाः स्युस्,
तथाऽनुगाःस्यु र्ध्रुवसत्यमेतत् ।
अस्माद्धि हेतो र्भुवि भारतस्य,
सर्वत्र राज्यं कलहस्य जातम् ॥८८ ॥

श्रेष्ठजन (देश के नेता) जिस प्रकार के आचरण वाले होते हैं उसी प्रकार के आचरण वाले उनके अनुयायी होते हैं यह बात अटल सत्य है । इसीलिए भारत भूमि पर सब जगह कलह का राज्य हो रहा है ।

बाग्वागुराग्रस्तनृमीनवृन्दान्,
आश्वासनामांससुपिण्डसक्तान् ।
तान् दर्शयित्वा सुरलोकदृश्यम्,
आस्वाद्यते नेतृगणैरभीष्टम् ॥८९ ॥

वाणी रूपी जाल में फंसे मनुष्य (जनता) रूपी मछलियों की आश्वासन रूपी मांस खण्डों में आसक्त, समूह को, स्वर्ग लोक के काल्पनिक दृश्य दिखाकर नेता लोग मन चाहे सुख लूट रहे हैं ।

शिक्षा प्रसारश्च कृषेर्विकास,
अस्पृश्यतायाश्च समूलनाशः ।
जने-जने मानवताप्रकाशः,
कुर्वन्ति नित्यं सुदृढं स्वदेशम् ॥९० ॥

सफल, सार्थक शिक्षा का प्रसार, कृषि कर्म का विकास, छुआ-छूत का समूल विनाश और जन-जन में मानवता का प्रकाश, नित्य ही देश को सुदृढ बनाते हैं ।

वत्सं यथा गौर्निजदुग्धदानैः,
पुष्पत्यजस्रं प्रतिदानशून्या ।
तथा महीधेनुरनन्तरत्नैः,
पुष्णाति जीवान् गतलोभमोहा ॥९१ ॥

जिस प्रकार एक गाय बिना किसी प्रतिदान की भावनावाली, अपने दुग्ध दान से निरन्तर अपने छोटे बच्चे को पालती है उसी प्रकार भूमि रूपी गाय बिना किसी लोभ के अनन्त रत्नों से जीवों को पुष्ट करती रहती है ।

उच्छेदनं सारवतां वनानाम्,
विध्वंसनं काननपादपानाम् ।
स्रोतस्विनीनां जलदूषणञ्च,
देशाय भद्रं न भवन्ति लोके ॥९२ ॥

हरे-भरे सारवान वनों का उजाड़ना, वन के हरे वृक्षों का विनाश करना नदियों के शुद्ध व पवित्र जलों को दूषित करना, संसार भर में किसी भी देश के लिए हितकारी नहीं होते ।

आरोपणं नूतनपादपानाम्,
पुण्यप्रदं दुःखहरं सदैव ।
शास्त्रेष्वपीदं विशदेन गीतम्,
'एकोहि वृक्षो दशपुत्रतुल्यः' ॥९३ ॥

नये वृक्षों का लगाना, सदा से ही पुण्य देने वाला और दुःखों को हरने वाला माना जाता रहा है । शास्त्रों में भी वृक्षारोपण का महत्व विशद रूप से गाया गया है—'निश्चय ही एक वृक्ष दशपुत्रों के समान महत्वपूर्ण होता है ।'

शैलूषकन्या निजदर्शकाणाम्
वेषैर्विचित्रैः कलकण्ठगानैः ।
लीलाविलासै र्मृदुहावभावैर्
मनांसि मुग्धानि यथा करोति ॥९४ ॥
तथैव सौम्या प्रकृति र्मनोज्ञा
रम्यैर्मनोज्ञैर्विविधैः स्वरूपैः ।
नदीवनोद्यानद्याराधरेन्द्रैः
सदा नवोढेव विराजते ऽत्र ॥९५ ॥

जिस प्रकार कोई युवा नर्त की अपने विचित्र वेषों से, सुन्दर कण्ठ से निकले मधुर गानों से, लीला विलासों से एवं कोमल हाव-भावों से अपने दर्शकों के मन मोह लेती है ।

उसी प्रकार सौम्य, मनोहर प्रकृति, अपने रमणीय, मनोरम विविध रूपों से तथा नदी, वन, उपवन, भूमि और पर्वतों से, विवाहित दुल्हन की तरह सदा ही सजी-बनी रहती है ।

मनोहरं मोदभरं मनोज्ञ-
मावर्षकान्तं रमणीयमेव ।
षण्णामृतूणां प्रचुरं प्रसादम्
भुंक्ते सदा भारतदेशभूमिः ॥९६ ॥

भारत देश की भूमि पूरे वर्ष सुन्दर लगने वाले, मन को हरने वाले प्रसन्नता प्रदान करने वाले, रमणीय और मनोरम लगने वाले, प्रकृति के सुन्दर प्रसाद का उपयोग करती रहती है ।

पुण्यां पिवत्रामजनाभभूमिम्,
स्रोतांसि नद्यो गिरयो बनानि ।
तीर्थान्यनेकानि तपस्थलानि,
कुर्वन्ति नित्यं शुभदां मनोज्ञाम् ॥९७ ॥

पुष्प प्रदान करने वाली, पवित्र भारत भूमि को, अनेक झरने नदियाँ, पर्वत, वन, तीर्थ स्थान एवं अनेक तपस्या के कारण पवित्र बने स्थल, शुभ और मनोहर बनाते रहते हैं ।

महीयसीं मानवतीं मनोज्ञाम्,
मातुः समां मातृमहीं मदीयाम् ।
मित्रो मयूरा मनुजाश्च मेघाः
श्रद्धान्विता वै प्रणमन्ति नित्यम् ॥९८ ॥

महाश्रेष्ठ, मानवाली मन को अच्छी लगने वाली, माता के समान पूजनीय मेरी मातृ-भूमि को सूर्य, मोर, मनुष्य और मेघ श्रद्धापूर्वक नित्य ही प्रणाम करते हैं ।

सम्भूय चेद् भारतभूमिपुत्राः,
प्रजातिवर्णाश्रमवर्गभेदान् ।
विच्छेत्तुकामाः प्रभवेयुः शीघ्रम्,
भूयात्तु भूमिर्ननु देवभूमिः ॥९९ ॥

यदि जाति, उपजाति, वर्ण, आश्रम एवं वर्ग आदि के भेदों व बन्धनों को, सभी भारत वासी मिलकर तोड़ने के लिए शीघ्र ही समर्थ हो जाएँ तो निश्चित ही भारत भूमि देव भूमि बन जाए ।

चेद् भारतीया युवका युवत्यः
सामाजिकाः शासकशासिकाश्च ।
विशुद्धभावैः सुतरां यतेरन्,
भूयात्तु भूर्नो ननु देवभूमिः ॥९०० ॥

यदि भारत देश में जन्म लेने वाले युवक और युवतियाँ , समाज के नेता शासक और शासिका, विशुद्ध भाव से अपने देश की उन्नति के लिए यत्न करें तो अपनी भारत भूमि देव भूमि बन जाए।

ये प्राणदां मातृधरां नमस्याम्,
बन्द्यां प्रशस्यां जननीस्वरूपाम् ।
नमन्ति रक्षन्ति गृणन्ति ते तु,
भवन्ति वन्द्या अभिनन्दनीयाः ॥९१ ॥

जो युवक मातृ स्वरूपा, वन्दनीया, प्रशंसनीया, नमनीया प्राण देने वाली मातृ भूमि का नमन करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और उसका गुण गान करते हैं वे वन्दनीय और अभिनन्दनीय होते हैं ।

तृतीयम्

वार्धक्य शतकम्

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

आशंसनम्

संस्कृत में शतक रचना की परम्परा प्राचीन भी है और प्राप्तादर भी। अमरुक जैसे रसिक कवि इस विधा को अपना कर संस्कृत साहित्य में अमर हो चुके हैं। एक छोटे किन्तु महत्वपूर्ण विषय पर वैयक्तिक चिन्तन की गहरी छाप डालकर उसे गम्भीरता, रमणीयता तथा व्यापकता प्रदान करना तथा उसमें साहित्य सुलम रमणीयता उजागर करना शतक कर्त्ता का कवि कर्म होता है। मुक्तक शैली की इस विधा में प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक वैदग्ध्य, गाम्मीर्य तथा मर्मज्ञता अपेक्षित होती है; क्योंकि प्रबन्ध रचना में तो सम्पूर्ण प्रसंग की रसवत्ता हो जाने पर प्रतिपाद्य चमत्कार के न होने पर भी काम चल जाता है; जबकि शतक में तो प्रत्येक पद्य में नवीन चमत्कार का होना आवश्यक होता है तभी वह मार्मिकों को आह्लादित कर पाता है। इसमें तो प्रत्येक पद्य एक पूर्ण इकाई होता है और उसकी गुणवत्ता की परीक्षा उसी में निहित निरवद्य प्रत्यवयव रम्यता के आधार पर होती है। इसलिए शतक रचना में प्रबन्ध रचना की अपेक्षा अधिक प्रगल्भता देखी जाती है।

संस्कृत के जाने माने कवि श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री ने कई शतकों की रचनाकर के संस्कृत के इस क्षेत्र को समृद्ध किया है। प्रस्तुत वार्धक्य शतक' में भी इनकी पैनी दृष्टि ने वार्धक्य के बड़े स्पष्ट और स्वाभाविक चित्रों को प्रकट किया है। भाषा अत्यन्त सरल है, यहाँ तक की रोज मर्रा के व्यवहार के शिष्ट तथा विशिष्ट शब्दों का ही रचना में बाहुल्य है। फलतः हिन्दी का एक अच्छा जानकार (भले ही संस्कृतज्ञ न हो) भी पद्यों का अर्थ जान सकता है। आज संस्कृत को, इसका स्तर सुरक्षित रखते हुए जो सरल बनाने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है, इस दिशा में शास्त्रीजी का यह प्रयास स्तुत्य है। उदाहरणार्थ—

सौभाग्यशाली कृतपुण्यकर्मा
सद्धर्मनिष्ठ : सदसद्विवेकी।
सन्तोषवृत्तिः करुणार्द्रचित्तः
प्रणम्यते सर्वजनैः प्रवृद्धः॥

कितनी सरलता और सर्वप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग हुआ है। आज की आवश्यकता यही है कि चिरन्तन विचारामृत से भरी संस्कृत के प्रौढ मूल्यों को गम्य शैली द्वारा समाज तक पहुँचा कर भारत की इस धरोहर की रक्षा की जाए। इस दिशा में श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री जी का प्रयास सभी के लिए अभिनन्दनीय है।

अध्यक्ष—संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सोलन (हिमाचल प्रदेश)
दि १०/२१/९६

विद्वद्वशंवदः
आचार्य केशवराम शर्मा

वार्धक्य शतकम्

वृद्धेषु वृद्धः कमलासनस्थो,
यो विश्वकर्ता प्रपितामहोऽजः ।
हिरण्यगर्भश्चतुराननोऽसौ,
वाचं मदीयां सुफलाङ्करोतु ॥१ ॥

जो, वृद्धों में भी अतिवृद्ध, कमल के आसन पर विराजमान, विश्व का कर्ता, सभी का प्रपितामह, अज और हिरण्य गर्भ तथा चार मुख वाला (ब्रह्मा) है, वह मेरी वाणी को सफल करे।

गतं शिशुत्वं प्रियमातुरंके,
वाल्यं तथा मित्रचयेन साकम् ।
तद् यौवनं मे नवयौवतेषु,
जाने जरा नैव कथं प्रयायात् ॥२ ॥

मेरा शैशव तो प्यारी माता की गोदीं में बीता, बाल्यावस्था मित्र मण्डली के साथ बीती, युवा अवस्था नई नवेली युवतियों में कट गयी परन्तु अब वृद्धावस्था कैसे बीतेगी यह मैं नहीं जानता।

कीदृग्विचित्रंत्विदमस्ति तथ्यम्,
श्रुतं मयाकिं ह्यवलोकितं किम् ?
यद् यौवनंचेद् गतमेकवारम्,
तद् यौवनं तर्हि न लभ्यतेऽत्र ॥३ ॥

यह कितना विचित्र तथ्य है, कि मैंने क्या सुना और क्या देखा ? जो यौवन एक बार चला गया, वह फिर दोबारा कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

परं जरेयं कियती सशक्ता,
चेदेकबारं हि समागतेयम् ।
तर्हि स्व पादौ सुदृढं विधाय,
सुतिष्ठतीत्थं धरिणी यथेयम् ॥४ ॥

परन्तु यह वृद्धावस्था कितनी शक्तिशालिनी है कि यदि यह एक बार आ गई तो यह अपने पैर जमा कर इतनी दृढता से बैठती है जिस प्रकार वह धरि त्री अचल होकर बैठी है।

जनैर्जरियं तु तिरस्कृताऽपि,
नापेक्षिता चापि न सम्मताऽपि ।
अनादृता सर्वविधं शरीरे,
विहीनलज्जा कुरुते स्ववासम् ॥५ ॥

मनुष्यों के द्वारा बार-बार तिरस्कार की जाती हुई, न चाही जाती हुई, सम्मान न की जाती हुई, बार-बार दुत्कारी जाती हुई भी, यह निर्लज्ज वृद्धावस्था, एक बार आने पर मनुष्य के शरीर में, सभी प्रकार से अपने रहने का स्थान बना ही लेती है ।

माता सदा कामयते सुतो मे,
भवेच्चिरायुश्च महाधनाढ्यः ।
सौख्यान्यनेकान्युपभुज्य लोके,
पश्येदसौ पौत्रमुखारविन्दम् ॥६ ॥

माता सदा ही कामना करती है कि उसका पुत्र चिरायु और धन-धान्य वाला हो, और इस लोक में अनेक सुखों का उपभोग कर वह भी अपने बेटे-पोतों का कमल मुख देखे ।

बाला, युवत्य, स्तरुणा, युवानो,
वाञ्छन्ति सर्वे त्विदमेव नित्यम् ।
ते चापि लोके सुखिनो भवेयुर्
वृद्धा भवेयुः सुतपौत्रवन्तः ॥७ ॥

बाला हो चाहे युवती, तरुण पुरुष हो चाहे युवक, इस बात को तो सभी सदा ही चाहते हैं कि वे भी सुखी हों और इस लोक में वृद्ध हों और बेटे-पोते वाले बनें ।

स्रस्तांसवाहुः सितकेशजालः
प्रक्षीणदृष्टि र्धृतकीचकांशः ।
पदे-पदे प्रस्खलनाद्भिभीतः,
प्रयाति कोऽयं ? ननु कोऽपि वृद्धः ॥८ ॥

झुके हुए कन्धों व भुजाओं वाला, सफेद बालों के जाल वाला, कमजोर दृष्टिवाला, हाथ में बाँस का टुकडा लिए हुए, पग-पग पर ठोकर लग जाने के भय से डरा हुआ, यह कौन जा रहा है ? निश्चय ही यह कोई बूढा मनुष्य होगा ।

पश्चार्धलम्बी धृतवंशदण्डो
विजीर्णशीर्णञ्च निजोपनेत्रम् ।
वामेन हस्तेन सदा सुरक्षन्,
गच्छत्यसौ को? ननु कोऽपि वृद्धः ॥९ ॥

झुकी हुई कमर वाला हाथ में बाँस की लाठी पकड़े हुए, अपने पुराने और कमजोर हुए चश्मे को बार-बार बांए हाथ से संभालते हुए यह कौन जा रहा है ? निश्चय ही यह कोई बूढा मनुष्य होगा ।

अस्त्यत्र लोके विपदां विरामः
सन्तीह सर्वाः क्षणभंगुरा वै ।
एकाऽस्ति यस्या न विराम एव,
महाविपत्तिस्तु जरा प्रसिद्धा ॥१० ॥

इस संसार में विपत्तियों का कोई न कोई अन्त अवश्य है । सभी वित्तियाँ कुछ समय रह कर अपने आप ही शान्त हो जाती है । ऐसी एक ही विपत्ति है जिसका न तो कोई अन्त है न कोई विराम वह महाविपत्ति है, सारे संसार में प्रसिद्ध 'वृद्धावस्था' ।

जराप्रभावो ननु शाश्वतोऽस्ति
विलोक्यतेऽसौ जडजंगमेऽपि ।
जीर्णं न यत्स्यान्न तदस्ति किञ्चिज्,
जीर्यन्ति जीवा जगति प्रजाताः ॥११ ॥

वृद्धावस्था का प्रभाव निश्चित ही शश्वत है । इस वृद्धावस्था का प्रभाव तो चेतन-अचेतन सभी पर दिखाई देता है । ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो जीर्ण न होती हो । संसार के जन्म लेने वाले सभी जीव निश्चित रूप से जीर्ण होते हैं ।

सौभाग्यशाली कृतपुण्यकर्मा,
सद्धर्मनिष्ठः सदसद्विवेकी ।
सन्तोषवृत्तिः करुणार्द्रचित्तः,
प्रणम्यते सर्वजनैः सुवृद्धः ॥१२ ॥

उस वृद्ध व्यक्ति को तो सभी प्रणाम करते है जो सन्तोष का धनी है, सद्सद का ज्ञान रखने वाला है, सत्कर्म-धर्म में लगा रहता है, जिसका चित्त करुणामय है और पुण्यात्मा है । वह सचमुच बड़ा ही सौभाग्य वान वृद्ध होता है ।

कालागमात्पूर्वमनेकमर्त्या
जीर्यन्ति नित्यं न जितेन्द्रिया ये।
ते नाऽत्र जीर्यन्ति कदापि मर्त्या
जयन्ति ये तानि निजेन्द्रियाणि ॥१३॥

वृद्धावस्था के समय आने से पहले ही अनेक मनुष्य जो जितेन्द्रिय नहीं होते, बूढे हो जाते हैं परन्तु इस लोक में वे मनुष्य कभी बूढे नहीं होते जो अपनी इन्द्रियों को जीत लेते हैं।

जीर्यन्ति जीवाश्च समे पदार्था
न जीर्यतीयं तु जरा कदापि।
दुष्टा जरेयं सुदिने दिनेऽत्र,
भूत्वा बलिष्ठा तरुणायते च ॥१४॥

इस संसार में सभी प्राणी और समस्त पदार्थ निश्चित रूप से बूढे (जीर्ण) होते है परन्तु जरावस्था कभी बूढी नहीं होती। यह दुष्ट वृद्धावस्था तो दिनप्रतिदिन बलवती होती हुई जवान ही होती चली जाती है।

जीर्यन्ति मर्त्या नवयौवने ते,
ये सन्ति दासास्तु निजेन्द्रियाणाम्।
एतानि जित्वा मनुजः सदैव,
वृद्धायते नो तरुणायते च ॥१५॥

वे व्यक्ति नव यौवन में ही बूढे हो जाते हैं जो अपनी इन्द्रियों के वशी भूत होते हैं। इन इन्द्रियों को जीतकर ही मनुष्य वृद्ध नहीं होता अपितु वह तो तरुण बनता चला जाता है।

वृद्धस्तु कश्चिद् व्यवहारदक्षः,
स्वाधीनवृत्ति र्निजगुप्तवित्तः।
उपर्जितार्थो हि सुतैश्च पौत्रैर्
निषेव्यते नैव तु पूज्यतेऽपि ॥१६॥

जीवन में बहुत सा धन अर्जित करने वाला, सांसारिक जीवन के व्यवहार में कुशल, स्वतंत्र वृत्ति वाला अपने अर्जित धन को गुप्त रूप से सुरक्षित रखने वाला कोई वृद्ध अपने बेटे पोतों के द्वारा सेवा ही नहीं किया ताता अपितु पूजा भी जाता है।

यस्यात्मजाः सन्ति निदेशवाहाः,
प्रियाच भार्या विरुजं शरीरम्।
लक्ष्मीश्च सद्दानवती विशुद्धा
स एव वृद्धो ननु पुण्यशीलः ॥१७॥

जिस वृद्ध व्यक्ति के पुत्र उसकी आज्ञा पालन करने वाले हैं, प्रेम करने वाली पत्नी है, बिना किसी रोग वाला स्वस्थ शरीर है जिसकी विशुद्ध लक्ष्मी सद्दान वाली है वह वृद्ध वास्तव में बहुत बड़ा पुण्यशील व्यक्ति होता है।

कश्चित्प्रवृद्धः सुतपौत्रतुष्टः
प्रफुलनेत्रो नितरां प्रहृष्टः।
पुत्रेषु पौत्रेषु सदानुरक्तः,
प्रमोदते प्रेमभरः सदैव ॥१८॥

जो कोई वृद्ध पुरुष अपने बेटे पोतों के व्यवहार से सन्तुष्ट है, हर समय प्रसन्न नेत्रों वाला और हृष्ट पुष्ट अंगों वाला है, अपने पुत्र और पौत्रों में अनुराग रखता है, वह वृद्ध सदा ही प्रेमभाव से भरा हुआ विशेष आनन्द का अनुभव करता है।

सौभाग्यशाली तु स एव वृद्धो
भार्यासहायो गतशोकरागः।
संसारमोहं परिहाय तुष्टः,
पुण्येषु तीर्थेषु करोति वासम् ॥१९॥

सौभाग्यशाली तो एक मात्र वही वृद्ध कहा जा सकता है जो सभी प्रकार के शोक और मोह को छोडे हुए संसार के माया मोह को त्याग कर सन्तुष्ट रहने वाला पत्नी सहित पवित्र तीर्थ स्थलों पर अपना आवास बनाता है।

विद्वेषपैशुन्यघृणाश्च वैरम्
ईर्ष्या च मन्युः परवञ्चनञ्च।
यद् यद् गृहञ्चाधिवसन्ति नित्यम्,
तत्तद् गृहं वै नरकायतेऽत्र ॥२०॥

जिस-जिस घर में पारस्परिक विद्वेष भाव, एक दूसरे की चुगली लगाना, आपसी घृणा, वैर भाव, ईर्ष्या, क्रोध और एक दूसरे को धोखा देने की भावना निवास करती हैं, वह घर निश्चय ही इस भूमि पर नरक बन जाता है।

वृद्धाकिशोरीयुवतीसनाथम्,
अन्योन्यसुप्रेमसुधाभिषिक्तम् ।
गेहं सुधान्यान्नसमृद्धिपूर्णम्,
स्वर्गायते यन्न हि तद् विचित्रम् ॥२१ ॥

जो घर वृद्धाओं, किशोरियों और युवतियों के पारस्परिक प्रेम से सम्पन्न होता है और आपसी प्रेमामृत से सिंचित होता है वह घर सदा ही धन-धान्यों, अच्छे अन्नों वाला एवं सम्पन्नता युक्त होता है वहाँ स्वर्ग ही हो, इसमें विचित्रता ही क्या है ।

श्रद्धादयाप्रेमसहानुभूति-
सौहार्दमैत्रीकरुणाप्रमोदाः ।
यस्मिन् गृहेऽमी विलसन्ति नित्यम्,
तस्मिन् गृहे श्रीर्विलसत्यजस्रम् ॥२२ ॥

जिस घर में श्रद्धा, दया, प्रेम, सहानुभूति, सुहृदता, मितता करुणा एवं प्रसन्नता आदि सद्गुण सदा ही निवास किया करते हैं उस घर में निरन्तर श्री लक्ष्मी का निवास रहता है ।

नैके मनुष्या गुणदोषविज्ञा
भूत्वा गृहस्था अपि नो गृहस्थाः ।
गार्हस्थ्यकर्माण्यपि पालयन्तः,
संसाररागै र्न भवन्ति बद्धाः ॥२३ ॥

अच्छे बुरे का ज्ञान रखने वाले अनेक मनुष्य, गृहस्थ आश्रम में रहते हुए गृहस्थ के कर्मों व धर्मों का पालन करते हुए भी, गृहस्थ के बन्धनों से दूर, संसार के मायामोह के चक्र में नहीं पड़ते ।

जितेन्द्रिया ये च विशुद्धचित्ता,
मायाप्रपंचेषु सदा विरक्ताः ।
गृहस्थिताः सन्ति महेशभक्तास्
त एव वृद्धा जगति प्रशस्याः ॥२४ ॥

जो वृद्ध व्यक्ति विशुद्ध चित्त वाले और जितेन्द्रिय होते हैं वे माया के सभी प्रपंचों से सदैव दूर रहते हैं । घर में रहते हुए भी जो भगवान शंकर की भक्ति करते हैं वे ही वृद्ध व्यक्ति संसार में प्रशंसा के पात्र बनते हैं ।

गृहं भवेद् वा विपिनं प्रशान्तम्
राज्यासनं वा सुधरा कठोरा।
सुस्वादु वान्नं वनकन्दमूलम्,
तेभ्यः समानं न हि किं विशिष्टम् ॥२५॥

विवेकशील, प्रवृद्ध ज्ञानी वृद्ध मनुष्यों के लिए तो, घर हो या प्रशान्त वन, राज्य का सम्मानित ऊंचा आसन हो या कठोर नंगी भूमि, स्वादिष्ट भोजन हो या वन में उत्पन्न होने वाले कन्द मूल फल, सभी समान होते है। उनके लिए कोई भी चीज महत्व की नहीं होती।

सद्धर्मनिष्ठः, शितिकण्ठभक्त
आस्तिक्यभावो जलपूतगात्रः।
श्रीराम रामेति जपन् प्रभाते,
शिवालयं गच्छति कोऽपि वृद्धः ॥२६॥

सद्धर्म में आस्था रखने वाला, भगवान शंकर का भक्त, आस्तिकता में विश्वास करने वाला जल से शुद्ध किए हुए गात्र वाला, श्रीराम, श्रीराम ऐसा जपता हुआ कोई वृद्ध व्यक्ति प्रातः काल शिवालय की ओर जाता है।

पौत्राननं वीक्ष्य तु कोपि वृद्धः
स्ववंशवृद्धिं विपुलां विभाव्य।
बद्धांजलिः प्रेमपयोधिमग्नो
मुहुर्मुहु र्नौति महेश्वरं सः ॥२७॥

कोई कोई वृद्ध व्यक्ति अपने नवजात पौत्र का मुख देखकर और अपने वंश की विपुल वृद्धि जानकर प्रेमपयोधि में मग्न होता हुआ हाथ जोड़े हुए, बार-बार भगवान शंकर को प्रणाम करता है।

श्रीनीलकण्ठो विजयानुसक्तो
देवाधिदेवो गिरिजानुरक्तः।
त्रिनेत्रधारी विधुशेखरो यः
स रक्षतान्मां मम वंशजाँश्च ॥२८॥

भाँग में आसक्ति रखने वाले, देवों के भी देव, पार्वती देवी में अनुराग करने वाले, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमा को सिर पर धारण करने वाले, श्री नीलकण्ठ भगवान मेरी तथा मेरे वंशजों की रक्षा करें।

कैलासवासी मृगचर्मधारी,
जटाधरो जह्नुसुताप्रियो यः ।
कन्दर्पदग्धा वृषभध्वजः स,
संरक्षतान्मां मम वंशजाँश्च ॥२९ ॥

जो कैलास पर्वत पर निवास करते हैं, मृगचर्म को शरीर पर धारण करते हैं, सिर पर जटा धारण किए हुए हैं, गंगा को प्यार करने वाले है, कामदेव को भस्म करने वाले हैं वे वृषभ ध्वज भगवान शंकर मेरी और मेरे वंशजों की रक्षा करें ।

यक्षस्वरूपो विकरालकालो;,
नागेन्द्रहारः सुपिनाकपाणिः ।
भस्मांगरागस्त्रिपुरान्तको यः
संरक्षतान्मां मम वंशजाँश्च ॥३० ॥

यक्ष का स्वरूप धारण करने वाले, विकराल काल के भी काल, बड़े-बड़े नागों को हार बनाकर कण्ठ में धारण करने वाले सुन्दर 'पिनाक' धनुष को हाथ के लिए हुए, चिता की भस्म को ही अंगराग बनाने वाले, त्रिपुर का अन्त करने वाले भगवान शंकर मेरी व मेरे वंशजों की रक्षा करें ।

श्मशानशायी नरमुण्डमालो,
लोकान्तकारी गरलाभिलाषी ।
त्रिपुण्ड्रधारी जगदीश्वरो य;,
संरक्षतान्मां मम वंशजाँश्च ॥३१ ॥

जो श्मशान भूमि में ही शयन करने के अभ्यासी है, नरमुण्डों की माला पहनने वाले हैं, प्रलयंकर है, विषपान करने के अभिलाषी हैं, मस्तक पर त्रिपुण्ड लगाते हैं, और सारे संसार के स्वामी हैं वे मेरी और मेरे वंशजों की रक्षा करें ।

शिवः शिवेशः सुखदो महेशः
सर्वेश्वरोऽभीष्टफलप्रदो यः ।
प्रशान्तिदाता करुणालयः स,
संरक्षातान्मां मम वंशजाँश्च ॥३२ ॥

जो महा ईश्वर है, सुख प्रदान करने वाले हैं, पार्वती के स्वामी हैं, सभी चराचर जीवों के प्रभु हैं, इच्छित फल देने वाले हैं, और शान्ति प्रदान करने वाले हैं, वे करुणालय भगवान शिव मेरी व मेरे वंशजों की रक्षा करें ।

इत्थं महेशं मनसा स्मरन्सः,
पौत्रं स्वकीयं नवनीततुल्यम् ।
स्नेहार्द्रचित्तः स्व करद्वयेन,
प्रोत्थाप्य मोदं भजते प्रकामम् ॥३३ ॥

इस प्रकार मन ही मन भगवान शंकर का स्मरण करता हुआ वह वृद्ध ताजे मक्खन के समान कोमल अंगों वाले अपने पौत्र को स्नेह से द्रवित होता हुआ, दोनों हाथों से उठाकर अत्यधिक प्रसन्न होता है ।

धृत्वा निजांके स्वसुतात्मजं तम्
प्रमोदमग्नस्तु पितामहोऽसौ ।
स्वस्थैः सुवाक्यैरभिनन्दयँस्तम्
मुहुर्मुहुश्चुम्बति पौत्रभालम् ॥३४ ॥

वह वृद्ध दादा, आनन्द सागर में डूबा हुआ, अपने प्रौत्र को अपनी गोद में उठाकर अच्छे-अच्छे शुभ अशीर्वचनों से उस पौत्र का अभिनन्दन करता हुआ बार-बार अपने पौत्र के मस्तक को चूमने लगता है ।

जीवेः शतं त्वं शरदः सतां वै,
भूयाः शतायुः कुलदीपकः स्याः ।
सूर्येण तुल्यस्त्वमपीह लोके,
भूया यशस्वी स्वरिपूँश्च जीयाः ॥३५ ॥

हे बच्चे ! तू सौ वर्ष की लम्बी आयु जीए, और शतायु बने । तू हमारे कुल का दीपक बने, तू इस संसार में सूर्य के समान यशस्वी बने और अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे ।

ऋद्धीर्लभेथाः सुयशश्च सिद्धीर्
विद्वाँश्च भूयाः गुणदोषविज्ञः ।
स्वराष्ट्रसेवी निजमातृभक्तः
सभ्यः सुवाग्मी सुपथानुगामी ॥३६ ॥

हे वत्स ! तू ऋद्धि, सिद्धि और अच्छे यश को प्राप्त करे । क्या अच्छा है क्या बुरा, इस तथ्य को भली प्रकार समझने वाला विद्वान, अपने राष्ट्र की सेवा करने वाला, अपनी माता का भक्त, सभ्य, अच्छा वक्ता तथा सन्मार्ग गामी व्यक्ति बने ।

पितामही चापि महाप्रवृद्धा
प्रेम्णा समादाय चुचुम्ब पौत्रम् ।
देवीञ्च देवान्मनसा स्मरन्ती,
पितृन् स्वकीयान्प्रणनाम भक्त्या ॥३७ ॥

अत्यधिक बूढ़ी दादी ने भी अपने पोते को उठाकर बड़े प्रेम से चूमा और मन ही मन देवी देवताओं का स्मरण करती हुई ने बड़े ही भक्ति भाव से अपने पितरों को प्रणाम किया ।

प्रहृष्टचित्ता जरसाऽपि जीर्णा
प्रामोदिकं पौत्रमुखारविन्दम्
विलोकयन्ती स्व करद्वयेन,
निगृह्य पौत्रं मुमुदे, चुचुम्ब ॥३८ ॥

वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त जीर्ण अंगों वाली प्रसन्न चित्त वाली पौत्र के मुखारबिन्द को देखती हुई बूढ़ी दादी ने अपने पौत्र को दोनों हाथों से उठाकर प्रसन्नता अनुभव की और उसे चूम लिया ।

सम्पिण्डितांगंनवनीततुल्यम्,
शिरीषपुष्पाग्रसमं विलोलम् ।
पार्श्वे शयानं निज जन्मदाया
विलोक्य पौत्रं गिरिशं ननाम ॥३९ ॥

उस बूढ़ी दादी ने ताजे मक्खन के समान कोमल, सिकुड़े हुए अंगों वाले, शिरीष पुष्प की पंखड़ियों के अग्र भाग के समान सुन्दर व मृदुल, अपनी माता के पास के लेटे पोते को देखकर भगवान शिव को प्रणाम किया ।

वृद्धाः सदा सामयिका भवन्ति,
कालोचितां ते प्रवदन्ति वाचम् ।
ये सत्यशीला गतमत्सरास्ते
कुर्वन्ति तद् यत्समयानुरूपम् ॥४० ॥

सभी वृद्ध सदा ही समय की गति समझने वाले हुआ करते हैं । वे सदा समयोचित बात ही कहा करते हैं । जो सत्य बोलने वाले और बिना किसी भात्सर्य भाव के होते हैं वे वही करते है जो समयानुरूप उचित होता है ।

येषां हि धैर्यं व्यसने विपतौ,
न हीयते ते खलु धीरधीराः।
एतादृशा एव सुजीर्णवृद्धा,
विपत्पयोधौ न भवन्ति मग्नाः ॥४१ ॥

इस लोक में वे ही व्यक्ति महाधीर कहलाते हैं जिन का धैर्य महाविपत्ति में और दुर्व्यसनों में फँस जाने पर भी नष्ट नहीं होता। ऐसे ही भले वृद्ध व्यक्ति विपत्ति रूपी सागर में नहीं डूबा करते।

वृद्धाः सुविज्ञाः सरलस्वभावा
लब्धाधिकारा विपुलार्थपन्नाः।
सदा कृतज्ञाश्च विधूतपापा
दुर्जातबन्धून्न हि विस्मरन्ति ॥४२ ॥

सभी बातों को भली प्रकार समझने वाले, सरल स्वभाव वाले अधिकार सम्पन्न, महान सम्पदा वाले, सदा किए हुए का अहसान मानने वाले, पाप रहित वृद्ध व्यक्ति ही, बुरे समय में साथ देने वाले बन्धुओं को कभी नहीं भूलते।

ब्राह्मे मुहूर्ते दिवसावसाने,
वृद्धा अनेके भ्रमणाय नूनम्।
निर्गत्य गेहात्स्व बहिः समेत्य,
उद्यानभूमीमुपयान्ति नित्यम् ॥४३ ॥

ब्राह्म मुहूर्त में और सायं काल निश्चय ही बहुत से बूढे व्यक्ति भ्रमण के लिए जाया करते हैं। वे सभी अपने-अपने घरों से निकल कर बाहर एकत्र होकर, एक साथ मिलकर उपवन में पहुँचा करते हैं।

सेवानिवृत्ता वहवः प्रवृद्धाः
स्वस्थेन्द्रिया गर्वसमुन्नतांसाः।
श्वानं समादाय विहारकाले,
स्वदर्पतुष्टिं हि सदा लभन्ते ॥४४ ॥

सेवा से निवृत्त (रिटायर्ड) बहुत से बूढे व्यक्ति, स्वस्थ इन्द्रियों वाले, अपने कन्धों को ऊंचा किए हुए (अकड़ के साथ) घूमने के समय कुत्ते को लेकर निकलते हैं और अपने अभिमान की तुष्टि करते हैं।

जुगुप्समानास्तनयाँस्कदाचित्,
बधूः कदाचित्तु कदा स्वभार्याम् ।
अन्वीक्षमाणाः परदोषमेव
दोषं स्वकं तेषु न वेत्ति कोऽपि ॥४५ ॥

कभी अपने पुत्रों की तो कभी अपने बेटों की बहुओं की तो कभी अपनी ही पत्नी की निन्दा करते हुए, तथा दूसरों में ही दोष व अवगुण ढूंढते हुए बतियाते हैं परन्तु उन बूढों में से कोई सा भी बूढा अपने दोष नहीं देखता ।

धनैः प्रवृद्धा रसिकाश्च केचि-
दाकण्ठमग्ना मधुपानपात्रे ।
नारी-सुरामांसनिषेवमाणा
मन्ये धरायां विचरन्ति दैत्याः ॥४६ ॥

धन धान्य से सम्पन्न कुछ बूढे रसिक व्यक्ति शराब के प्यालों में ही बुरी तरह डूबे रहते हैं । सुरा-सुन्दरी के साथ-साथ मांस का भी सेवन करने वाले वे मानो इस भूमि पर दैत्य ही हों ।

वृद्धा अनेके मधुपानशीला,
वित्तैर्विहीना अपि पानसक्ताः ।
विक्रीय पूर्वार्जितसम्पदं ते,
क्रीणन्ति मद्यञ्च पिबन्ति मत्ताः ॥४७ ॥

शराब पीने की आदत वाले अनेक बूढे व्यक्ति, धन हीन होते हुए भी पीने के शौकीन होते हैं । वे अपनी पहली कमाई सम्पत्ति व जमीन जायदाद बेचकर शराब खरीदते हैं पीते हैं और मस्त रहते हैं ।

मत्वा सुधां ये तु सुरां पिबन्ति,
जानन्ति ते चापि विषं करालम् ।
परन्तु तत्स्वादुविलुब्धजिह्वास्
तदुज्झितुं ते न भवन्ति शक्ताः ॥४८ ॥

जो व्यक्ति शराब को अमृत जानकर पीते हैं वे भी यह जानते हैं कि शराब एक भयंकर विष है परन्तु शराब के स्वाद में विलुब्ध जिह्वा वाले वे उस शराब को पीना छोड़ नहीं सकते ।

पुरा वियुक्तौ नवयौवने यौ,
वार्धक्यकाले मिलतः पुनश्चेत्।
तौ द्वौ हसन्तौ परिरभ्य दोर्भ्याम्,
शं पृष्टुकामौ लपतस्ततस्तु ॥४९ ॥

काफी समय पूर्व युवावस्था में विछुड़े जब दो व्यक्ति वृद्धावस्था में फिर मिलते हैं तो वे दोनों हँसते हुए, एक दूसरे को दोनों हाथों से आलिंगन करके, एक दूसरे की क्षेम कुशल जानने के इच्छुक आपस में बात करने लगते हैं।

पृष्टो द्वितीयः प्रथमेन चेत्थम्,
'कदागतस्त्वं च कदाऽऽगतस्त्वम्?
आसीत्समं किं मम बन्धुजाया?'
'न बन्धु जाया न च कोऽपि बन्धुः' ॥५० ॥

पहले वृद्ध ने दूसरे से इस प्रकार पूछा कब और कहाँ गया था, यहाँ कब आया? क्या वहाँ तेरे साथ मेरी भाभी भी थी? दूसरे ने उत्तर दिया 'न तो वहाँ तेरी भाभी थी और न कोई दूसरा बन्धु ही मेरे साथ था।'

क्वासीः? विदेशे, कथ? मत्र नाऽऽसीः,
किम्? साधनं, कस्य? धनस्य, मन्ये।
तत्राऽस्ति को? मे त्वनुजो, नु शिल्पी?
नासौ, पुनः कः? स तु पोतवाहः ॥५१ ॥

हे मित्र तू कहाँ रहा? विदेश में। क्यों? यहाँ नहीं है। क्या नहीं है? साधन नहीं है। किसका? धन का। इस बात को मैं भी मानता हूँ। तेरा वहाँ कौन था? मेरा छोटा भाई। क्या वह कोई कारीगर है? नहीं। फिर क्या है? वह पानी के जहाज का चालक है।

जराविपाकाच्चरणौ भुजे द्वे,
नेत्रे च कर्णौ शिथिलीभवन्ति।
विहाय शीघ्रं विषयाँस्तथैव,
शान्तो निशान्ते हि यथोर्मिमालः ॥५२ ॥

वृद्धावस्था के कारण मनुष्य के दोनों हाथ और दोनों ही पैर, आँख और कान शिथिल हो जाते हैं। ये सब अपने अपने विषयों को छोड़कर उसी प्रकार शान्त हो जाते है जैसे प्रातः काल समुद्र शान्त हो जाता है।

आसन्नमृत्युः शयनाधिरूढः
कासप्रकोपादवरुद्धकण्ठः ।
विवक्षमाणोऽपि च हीनशक्ति
रुक्त्वा न किंचिद्वियदीक्षतेऽसौ ॥५३ ॥

शीघ्र ही काल के घर में जाने को तैयार, खाट पर पड़ा हुआ, खाँसी के प्रक्षोप के कारण रुँधे कण्ठवाला, अशक्त बना कुछ कहना चाहते हुए भी, कुछ कह न सकने के कारण आकाश को ही देखता रह जाता है

शैय्याधिरुढः सरुजो निरीह,
रुत्थाय पातुं न पयोऽपि शक्तः ।
पयः पिपासुस्तृषितो क्षुधार्तो,
क्षुत्क्षामकण्ठः करुणं ब्रवीति ॥५४ ॥

रोग ग्रस्त, असहाय, खाट पर पड़ा हुआ, स्वयं उठकर पानी पीने में भी अशक्त पानी पीने की इच्छा करने वाला, भूखा-प्यासा, कामना, पूर्ण न हो पाने के कारण कराहता रहता है ।

कदा स्वपुत्रं तु कदा च पौत्रम्,
कदा स्व भार्यां तु कदा स्व पुत्रीम् ।
जलं जलं ताँस्करुणं प्रयाचन्,
अनाप्ततोयो बहते प्रखेदम् ॥५५ ॥

कभी अपने पुत्र से कभी अपने पौत्र से, कभी अपनी पत्नी से तो कभी अपनी पुत्री से करुणापूर्वक जल पिला देने की याचना करता हुआ भी जल प्राप्त न कर पाने पर बीमार निरीह वृद्ध बहुत ही खिन्न और दुःखी होता है ।

उपेक्षितास्ते निजबन्धुवर्गैः
पुत्रेषु विन्यस्तसमस्तवित्ताः ।
निःसारभूता न च शान्तचित्ता
दुःखानि वृद्धाः सततं सहन्ते ॥५६ ॥

अपने पुत्रों को अपनी सब धन सम्पत्ति दे देने वाले, धन दे देने के कारण निर्धन बने अशान्त चित्त वाले, अपने खानदानियों व बन्धु बान्धवों से उपेक्षित बहुत से बूढे व्यक्ति अनेक प्रकार के दुःख सहन करते रहते हैं ।

जराविपाकाद् विकलेन्द्रिया ये,
कर्तुं न शक्ताः किमपि स्वकृत्यम्।
रुग्णाः शयानाः किमपि ब्रुवाणा
उपेक्षितास्ते स्वजनै र्भवन्ति ॥५७॥

अति वृद्धावस्था के फलस्वरूप, व्याकुल इन्द्रियों वाले जो बूढे व्यक्ति अपना कुछ भी कार्य पुरा नहीं कर पाते वे रोगग्रस्त, खाट पर पड़े हुए कुछ न कुछ कहने वाले अपने बान्धनों से उपेक्षित हुआ करते हैं।

हा राम! हा राम! इति ब्रुवाणा
आवर्तने चाऽपि तु कम्पमानाः।
कष्टान्यसह्यान्यपि दुर्विपाकात्
सोढ्वा प्रवृद्धा स्वजनान् शपन्ते ॥५८॥

हाय राम! हाय राम! ऐसी रट लगाने वाले करवट बदलने में भी अशक्त दुर्भाग्य वश अनेक असह्य कष्टों को सहते हुए अनेक वृद्ध व्यक्ति दुःखी हो कर अपने ही व्यक्तियों को शाप दिया करते हैं।

निषेव्यमाणस्तनयैश्च पौत्रैर्
न शान्तिमाप्नोति निरीहवृद्धः।
नानानिमित्तैर्जलसिक्तनेत्रो
रोदित्यजस्रं वहते च खेदम् ॥५९॥

कोई असहाय वृद्ध अपने बेटे पोतों के द्वारा सेवा किया जाता हुआ शान्ति अनुभव नहीं कर पाता। अनेक कारणों से अश्रुपूरित नेत्रों वाला कोई वृद्ध निरन्तर रोता रहता है और दुःख उठाता है।

संस्मृत्य वृद्धो निजदुष्कृतानि
सर्वाणि कर्माणि पुराकृतानि।
आसन्नमृत्यु र्मरणाद् विभीतः
पुनः पुन र्मुञ्चति नेत्रनीरम् ॥६०॥

मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ मृत्यु से भय भीत, पहले किए हुए अपने सभी अच्छे बुरे कर्मों को याद करके, बार आँखों से आँसू ही बहाता रहता है।

पृच्छन्ति पुत्राः पितरं रुदन्तम्,
किं रोदिषि त्वं? किमपेक्षसे च?
अनूद्य वृद्धः किमपि प्रगर्भम्,
रोदत्यजस्रं तनयान् विलोक्य ॥६१ ॥

शैय्या पर बीमार पड़े, रोते हुए वृद्ध पिता से उसके पुत्र पूछते है 'आप क्यों रोते हैं? आपको क्या चाहिए?' किसी भी गुप्त बात को न कहकर अपने पुत्रों को देख कर वृद्ध व्यक्ति लगातार रोता ही रहता है।

जीवन्ति वृद्धा विधवा अनेकाः,
पुत्राश्रिताः पुत्रसुताश्रिता वा।
पराश्रितास्ता निजभाग्यधेयम्
जुगुप्समाना न सुखं भजन्ते ॥६२ ॥

अनेक विधवा बूढी स्त्रियाँ अपने पुत्र के आश्रित रहने वाली या पोतों के आश्रित रहने वाली, पराश्रित रहकर अपने भाग्य को कोसती हुई रंचमात्र भी सुख नहीं ले पाती हैं।

यद् यद् गृहे आधुनिकाऽविनीता,
स्वायत्ततंत्राचरते प्रकामम्।
तत्तद् गृहे वृद्धतमा विशिष्टा
वृद्धाधिकारान् विवशा जहाति ॥६३ ॥

जिस जिस घर में आधुनिक सभ्यता के रंगढंग वाली नारी का राज्य (अधिकार) चलता हो उस घर में विशिष्ट वृद्धा स्त्री अपने वृद्धावस्था के अधिकारों को स्वयं छोड़ने के लिए विवश हो जाती है।

लब्धावकाशा गृहकार्यमुक्ताः
समेत्य सर्वाः समये विशिष्टे।
वृद्धा बधूनां गुणदोषजातम्,
प्रख्यायन्त्यो गमयन्ति कालम् ॥६४ ॥

गृहकार्यों से छुट्टी पाई हुई, पर्याप्त समय प्राप्त की हुई, सभी बूढी स्त्रियाँ (सास) एक विशिष्ट अवसर (समय) पर एक स्थान पर इकट्ठी होकर अपनी-अपनी बहुओं के गुणदोष बखानती हुई समय काटती हैं।

नैकाः प्रवृद्धा विधवाः सुविज्ञाः
संसाररागेषु सदा विरक्ताः ।
जीवन्ति लोके सततं सकष्टम्,
सौभाग्यदं प्राणधनं विनापि ॥६५ ॥

बहुत सी समझदार, ज्ञान सम्पन्न, सांसारिक माया मोह से सदा दूर रहती हुई विधवा वृद्ध स्त्रियाँ अपने सौभाग्य प्रदान करने वाले प्राणधन (पति) के बिना भी इस लोक में बड़े ही कष्ट का जीवन बिताती है ।

अवाप्य नौकां तलरन्ध्रयुक्ताम्,
यथाम्बुराशिः प्रविशत्यशंकम् ।
तथा जरेयं मनुजस्य तुच्छम्,
विलोक्य छिद्रं प्रवलायतेऽत्र ॥६६ ॥

जिस प्रकार नाव को तल में हुए छिद्र वाली पाकर जल राशि बिना किसी शंका के नाव में प्रवेश कर जाती है उसी प्रकार यह वृद्धावस्था भी मनुष्य के जरासे दोष को देखकर ही प्रबल हो उठती है ।

जरास्ति दुष्टा करुणाविहीना
शृणाति नित्यं जडजंगमं वै ।
तथा ह्रियन्ते जरसा जनानाम्,
सौख्यानि शान्तिश्च मनोविनोदाः ॥६७ ॥

वृद्धावस्था बड़ी ही दुष्टा और करुणा विहीन है । यह तो जड़ हो अथवा चेतन सभी को नित्य ही काटती रहती है । इस वृद्धावस्था के द्वारा तो मनुष्यों के सुखशान्ति और मन के सुख चैन छीन लिए जाते हैं ।

सर्वे जना मां गुणदोषहीनाम्,
दुष्टाङ्करालां भयदामनूद्य ।
क्रुध्यन्ति मह्यं न हि ते सुविज्ञा
विज्ञास्तु ते ये गतशोकचिन्ताः ॥६८ ॥

सभी मनुष्य, मुझ वृद्धावस्था को गुणदोष से रहित, दुष्टा, कराला, भयप्रदा कहकर मुझ पर क्रोध करते हैं वे वस्तुत समझदार नहीं हैं । समझदार तो वे ही हैं जो शोक और चिन्ता को छोड़कर स्वस्थ चित्त रहते हैं ।

अहं जरा मातृसमा सुजीवान्
मत्वा सुतान् स्वानिव पालयामि ।
स्वाङ्काधिरूढान् सुखदैः सुचैलै
राच्छाद्य सर्वाङ्खलु शाययामि ॥६९ ॥

मैं वृद्धावस्था सभी जीवों को माता के समान अपने ही पुत्र मानकर पालती रहती हूँ । अपनी गोदी में चढे सभी को अपने आराम दायक वस्त्रों से ढक कर शयन कराती रहती हूँ ।

यो जायतेऽ सौ मृतिमेति नूनम्
नास्त्यत्र कोऽपि त्वमरोऽजरो वा ।
अहंतु जीवान् समयात्पुरैव,
प्रवोधयन्ती विचरामि लोके ॥७० ॥

इस लोक में जो पैदा होता है वह निश्चय ही मरता है । यहाँ पर तो कोई भी अजर अथवा अमर नहीं है । मैं तो समय सेपूर्व ही प्राणियों को सावधान करती हुई सारे संसार में विचरती हूँ ।

जरा जनानां नहि भीतिहेतुर्
जरा धरायां नियति र्जनानाम् ।
वार्धक्यभावोपगतो मनुष्यो
भीयाज्जराया न तु कोऽपि विज्ञः ॥ ७१ ॥

वृद्धावस्था से मनुष्यों के डरने का कोई कारण नहीं है । इस भूमि पर वृद्धावस्था तो मनुष्यों का सहज स्वभाव है । वृद्धावस्था को प्राप्त करने वाला कोई भी विचारवान व्यक्ति बुढ़ापे से नहीं डरता ।

दानी दयालुः कपटी कुचाली
सद्वृत्तिहीनः प्रबलस्तपस्वी ।
वज्रांगदेहः कृशकायजीवो,
जीर्यन्ति सर्वे ध्रुवसत्यमेतत् ॥ ७२ ॥

चाहे, दानी और दयालु व्यक्ति हो चाहे कपटी और कुचाली हो । सदाचार हीन हो चाहे महान तपस्वी हो । हृष्ट पुष्ट अंगो वाला हो चाहे कृशकाय हो, यह अटल सत्य है कि बूढ़े सभी होते हैं ।

वृद्धास्तु नैके विवशा निरीहाः
प्रक्षीणदेहा धनवृत्तिहीनाः ।
सन्तोऽपि नित्यं धनिनां गृहेषु,
दासायमाना उदरं भरन्ति ॥ ७३ ॥

बहुत से वृद्ध व्यक्ति तो विवश, निरीह, कमजोर शरीर वाले धन और व्यवसाय विहीन होते हुए भी, धनवान व्यक्तियों के घरों में दास की तरह जीवन बिताते हुए अपना पेट भरते हैं ।

यो नास्ति दक्षः, कुशलो न कार्ये,
स भारवाहस्तु सदारपुत्रः ।
भूत्वाऽपि वृद्धो निजवृत्तिहेतोः
कष्टानि सोढ्वाऽपि करोति कर्म ॥ ७४ ॥

जो वृद्ध व्यक्ति किसी कार्य में कुशल नहीं होता वह मजदूर बनकर अपने बाल बच्चों को साथ लिए हुए, वृद्ध और अशक्त होते हुए भी अपनी मजदूरी के लिए अनेक कष्ट सहकर भी काम करता ही है ।

जानाति नाऽसौ घृतमस्ति कीदृग्
किमस्ति पक्वान्नमिदञ्च नापि ।
जानाति मात्रं लवणञ्च सूपम्
शाल्योदनं वै करपट्टिकाश्च ॥ ७५ ॥

वह गरीब, मजदूर वृद्ध यह तो जानता ही नहीं कि घी क्या होता है । और न ही यह जानता है कि पकवान क्या होता है । वह तो केवल दाल, भात, नमक और सूखी रोटी ही जानता है ।

शाल्योदनासक्तमनाः सदैव,
धराङ्कठोरामनुमत्य शैय्याम् ॥
सन्तोषसद्वृत्तिपरायणो वै,
आलभ्य लभ्यं बहुमन्यतेऽसौ ॥ ७६ ॥

दाल-भात में ही मग्न रहने वाला सदा कठोर भूमि को ही अपनी शैया मान कर सन्तोष रूपी सद्वृत्ति को ही महत्व देने वाला वह वृद्ध गरीब मजदूर जो कुछ मिलजाय उसी को पाकर प्रसन्न हो जाता है और उसे ही बहुत मानता है ।

अन्तर्मलीना धृतधर्मवेशा;
जटाधरा मुण्डितभालदेशाः ।
रुद्राक्षस्रग्भूषितकण्ठदेशाः
वसन्ति भव्येषु निजाऽऽ श्रमेषु ॥ ७७ ॥

अन्दर से मलीन वृत्ति वाले, ऊपर से धर्माचार्य का वेष धारण करने वाले, जटाधारी अथवा मुण्डित सिर वाले, रुद्राक्ष की मालाओं से सजे कंठ वाले अनेक वृद्ध साधुजन अपने भव्य आश्रमों में निवास करते हैं ।

'अहं विरागी' त्यपि मन्यमानाः
संसाररागेषु सदा प्रलीनाः ।
तथैव लोके विचरन्ति रक्ता
यथाऽर्थवन्तो वहवो गृहस्थाः ॥ ७८ ॥

'मैं वैराग्य सम्पन्न हूँ' ऐसा मानने वाले सांसारिक माया मोह में सदा फसे रहने वाले, संसार में आसक्त हुए उसी प्रकार का जीवन बिताते हैं जिस प्रकार का जीवन धनिक गृहस्थ बिताया करते हैं ।

यत्कामयन्ते गृहमेधिनो ये
तत्प्राप्तये ते नितरां यतन्ते ।
अवाप्य चैकं पुनराप्तुमन्यत्,
सँल्लब्धुकामा बलवद् यतन्ते ॥ ७९ ॥

जो गृहस्थ जन जिस चीज की कामना करते हैं वे उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील रहते हैं । वे एक वस्तु को प्राप्त करने के बाद दूसरी वस्तु को प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करते हैं ।

जटाधरा मुण्डितभालकेशाः
काषायवस्त्रावृत्तपूर्णदेहाः ।
नानानिमित्तैधृतसाधुवेशा
वृद्धाः स्वदेशे विचरन्ति धूर्ताः ॥ ८० ॥

बहुत से धूर्त वृद्ध पुरूष, जटा धारण किए हुए, घोट मोट सिर वाले, गेरूए वस्त्रों से पूरे शरीर को ढके हुए, नाना प्रकार के कारणों से साधु का वेश धारण किए हुए इस देश में घूमते फिरते हैं ।

केचित्त्वधीशा बहुमण्डलानाम्,
तथा मठानामपि सन्त्यधीशाः।
नाना प्रकारै र्निजभक्तलब्धैर्
धनैरनेकैस्तु भवन्ति भूपाः॥ ८१॥

इन साधुओं में से कुछ तो ऐसे भी हैं जो मण्डलाधीश व मठाधीश हैं। वे अपने भक्तों से विभिन्न प्रकार से प्राप्त अनेक प्रकार की धन सम्पत्तियों से सम्पन्न हुए राजाओं जैसा ही जीवन जीते हैं।

सिद्धोयथाऽहं न तथाऽस्ति कोऽन्यो
गुरुर्गरीयानहमेव सिद्धः।
भक्तान्स्वकीयान् भवसागराद्धि ,
पारं विनेतुं प्रभुरस्मि चाहम्॥ ८२॥

जैसा बड़ा और सफल सिद्ध मैं हूँ वैसा कोई दूसरा नहीं है। मैं ही सिद्ध महान गुरु हूँ। मैं ही अपने भक्तों को इस संसार सागर से पार ले जाने में समर्थ हूँ।

इत्थं प्रजल्पन् कुटिलः स धूर्तः
प्रदर्शयन् सिद्धिबलं विचित्रम्।
विमोह्य भक्तान् सरलस्वभावान्,
नाना विधानै र्वशगाँस्करोति॥ ८३॥

इस प्रकार व्यर्थ की बकवाद करता हुआ वह कुटिल व धूर्त साधु व्यक्ति, विचित्र प्रकार के सिद्धिबल का प्रदर्शन करता हुआ, भोले भाले भक्तों को मोहित करके अपने वश में कर लेता हैं।

एतद्विरुद्धं जगतः प्रलोभान्
विज्ञानवन्तो न हि कामयन्ते।
ते ब्रह्माविद्यामचलाञ्च भक्तिम्
वैराग्यभावं किल कामयन्ते॥ ८४॥

इन सबके विपरीत ब्रह्म जिज्ञासु ज्ञानी मनुष्य संसार के प्रलोभनों की कभी कामना नहीं करते वे तो ब्रह्माज्ञान, भगवान की अटलभक्ति और विरक्ति भाव की कामना किया करते हैं।

सर्वे समानाः खलु चेह नेत्थम्,
सन्तीह सिद्धा विगतस्पृहाश्च ।
'ब्रह्मैव सत्यं जगदस्ति मिथ्या,'
विभाव्य चेत्थं गिरिशं भजन्ते ॥ ८५ ॥

इस जगत में सभी समान आचार-विचार वाले हों ऐसी बात नहीं हैं । संसार के मायाजाल से दूर रहने वाले सिद्ध पुरूष भी इस संसार में हैं और 'ब्रह्म ही सत्य है जगत झूठा है' ऐसा मानकर भगवान शंकर का भजन करते हैं ।

'किमस्ति सत्यं किमसत्यमस्ति'
तथ्यं सदेदं सुविचिन्तयन्तः ।
तीर्थेषु पुण्येषु वनेष्वटन्तो
ब्रह्मत्वमाप्याऽत्र भवन्ति शुद्धाः ॥ ८६ ॥

'क्या सत्य है क्या असत्य है' सदा इसी तथ्य का विचिन्तन करते हुए, पवित्र तीर्थ स्थानों एवं वनों में भ्रमण करते हुए ब्रह्म जिज्ञासु जन ब्रह्मत्व को प्राप्त करके विशुद्ध आत्मा हो जाते हैं ।

विदन्ति विज्ञा जगदस्ति मिथ्या,
जगत्तु मायाकृतविस्तरं वै ।
माया प्रभोर्ब्रह्मविदां समझे,
दासीव नित्यं वहते निदेशम् ॥ ८७ ॥

ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति ही यह जान पाते हैं कि यह जगत् मिथ्या है । जगत् तो माया का रचा हुआ विस्तार (खेल) है । भगवान की माया ब्रह्मवेत्ताओं के सामने सदैव दासी की तरह उनकी आज्ञा का पालन करती रहती है ।

बधूर्नबोढा श्वशुराद् यथैव
जिह्रेति नायाति च तत्समक्षम् ।
तथैव माया सुनटी सलज्जम्,
पलायते ब्रह्मविदो विलोक्य ॥ ८८ ॥

जिस प्रकार नवविवाहिता स्त्री अपने ससुर से लजाती है और उसके सामने नहीं आती उसी प्रकार माया रूपी नटी भी ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को देखकर दूर से भाग खड़ी होती है ।

जिज्ञासवो ब्रह्मविदो भवन्ति,
त एव लोके मरणञ्जयन्ति।
विच्छेद्य पाशं किल संशयानाम्।
अभ्येत्य सत्यं तु भवन्ति मुक्ताः॥ ८९॥

ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति ही ब्रह्म वेत्ता हुआ करते हैं और वे ही इस लोक में मृत्यु को जीत लेते हैं। वे संशयों के जाल को काटकर वास्तविकता को जानकर मुक्त हुआ करते हैं।

प्रशान्तचेता विगतस्पृहो वै,
संसाररागेषु न दत्तचित्तः।
विज्ञाय मृत्युं नियतिं जनानाम्।
ध्यायन्महेशं विजहाति लोकम्॥ ९०॥

प्रशान्तचित्त वाला, किसी भी प्रकार की इच्छा न रखने वाला संसार के माया मोह के जाल में न फँसने वाला वृद्ध व्यक्ति ही मृत्यु को मनुष्यों की नियति जानकर भगवान शंकर का ध्यान करता हुआ इस लोक का त्याग कर देता है।

गंगातटोपान्तनिवासिनो ये,
श्रद्धान्विता भक्तिरताः प्रवृद्धाः।
गाङ्गं पवित्रं सुरदुर्लभं ते,
पिबन्ति नित्यं च भवन्त्यमर्त्याः॥ ९१॥

गंगा नदी के तट पर निवास करने वाले, श्रद्धाभाव से भरे हुए भक्ति रस में डूबे हुए जो वृद्ध पुरुष नित्य ही देवताओं को भी दुर्लभ गंगा का पवित्र जल पीते हैं वे अमर हो जाते हैं।

दिनोदये रात्रिमुखे च येऽपि,
हरप्रियां जह्नु सुतां त्रिमार्गाम्।
धूपैः प्रदीपैः कुसुमैश्च गन्धै,
रर्चन्ति ते यान्ति परां प्रतिष्ठाम्॥ ९२॥

प्रातः काल भगवान सूर्य देव के उदय होने पर और सूर्यास्त होने पर जो भक्त तीनों मार्गों से बहने वाली, मुनि जह्नु की पुत्री, भगवान शंकर की प्रिया गंगा को धूपदीप, पुष्प और गन्ध आदि से पूजते हैं वे परम पद को प्राप्त करते हैं।

विमलतरंगे ! गंगे ! मातः ! तव पद युग्मः सायं प्रातः ।
सहज पवित्रै र्यै र्यै र्ध्यातः, लोके मोक्षस्तै स्तैराप्तः ॥
सहजविशुद्धं गंगानीरं, सुरसरितश्चेत्पूतं तीरम् ।
येन सेवितममृतक्षीरं, विमलञ्जातं तस्य शरीरम् ॥
पीतं शुद्धं गाङ्गं यैर्यै, र्लब्धा मुक्तिर्लोके तैस्तैः ।
नेयं मुक्तिर्लभ्या सर्वैः, लभ्या गंगानिष्ठै र्भक्तैः ॥
इत्थं वेत्ति न गंगानीरम्, क आयातो गंगातीरम् ।
पीतं येनाऽपीदं नीरम्, नाऽसौ धत्ते पुनः शरीरम् ॥
येन गंगायशः प्रगीतम्, येन यथेच्छम् गांगं पीतम् ।
येन च गीताशास्त्रमधीतम्, लोके तेन किं न हि क्रीतम् ।
गंगा यस्मिन्नरे प्रसन्ना, यमदूता न हि तदासन्नाः ।
मोदन्ते ये तीरनिषण्णास्ते न भवन्ति लोके खिन्नाः ॥
बिहाय शैयामरुणोदये ये
नमन्ति नित्यं सरितं सुराणाम् ।
पिबन्ति गाङ्गं गिरिशं भजन्ते,
ते प्राप्नुवन्ति ह्यचलं शिवत्वम् ॥ ९३ ॥

अरुणोदय के समय ही अपने विस्तर को छोड़कर जो भक्तजन, देवताओं की पवित्र नदी गंगा को नित्य प्रति प्रणाम करते है, गंगा जल का पान करते हैं और भगवान शंकर की उपासना करते हैं वे भक्तजन सदा बने रहने वाले शिवत्व को प्राप्त करते हैं।

गंगाजलै र्मातृमही मदीयां
शुद्धा, पुनीता गतकल्मषाऽस्ति ।
अस्माद्धि हेतो र्मम देशभूमेर्
गायन्ति कीर्तिं ललनाः सुराणाम् ॥ ९४ ॥

मेरी मातृभूमि गंगा के पवित्र जलों से शुद्ध पुनीत और पूर्ण रूप से निष्कलंक है। इसलिए मेरे देश की पावन भूमि की कीर्ति का, देवांग नाएँ सदा ही बखान करती रहती हैं।

या कामसू भारतदेशभूमिः,
स्वर्गादपि स्वस्थतरा प्रसिद्धा।
या वन्दिता देवगणै र्नृभिश्च,
सा जन्म भूमिश्शरणं ममास्ति॥ ९५॥

सभी कामनाओं को पूरा करने वाली, भारत देश की जो भूमि स्वर्ग से भी उत्तम बताई गई है और जो देव गणों व मनुष्यों के द्वारा वन्दित है वही जन्म भूमि मुझे शरण देने वाली है।

महीयसी मातृमही च माता,
द्वे स्तो जनानां शरणं न चान्यत्।
कष्टान्यनेकान्यपि मातरौ द्वे,
सोढ्वा स्वपुत्रान् सुगतिं प्रदत्तः॥ ९६॥

श्रेष्ठ मातृभूमि और माता ये ही दो मनुष्य को शरण देने वाली होती हैं। इनके अलावा अन्य दूसरा कोई भी शरण देने वाला नहीं है। ये दोनों माताएँ अनेक कष्ट सहकर भी अपने पुत्रों को सद्गति प्रदान करती हैं।

प्राणव्ययं चापि न चिन्तयन्तो
महाविपत्सु प्रबलं श्वसन्तः।
अहर्निशं शत्रुदलं तुदन्तो
रक्षन्ति पुत्रा जननीं सदैव॥ ९७॥

अपने प्राणों की भी चिन्ता न करते हुए महान विपत्तियों में भी प्रबल रूप से आश्वस्त रहते हुए अपने शत्रुओं को रात दिन बैचेन बनाए रखने वाले पुत्र अपनी माता की सदा ही रक्षा करते हैं।

बाला युवानस्तरुणाश्च वृद्धा
वित्तैर्विहीना धनिकाः कृषाणाः।
संग्रामशौण्डा धृतशस्त्रहस्ताः
स्वजन्मभूमिं परिपालयेयुः॥ ९८॥

बालक, युवक, तरुण और वृद्ध, धनहीन, धनिक, किसान और संग्राम में कुशल, हाथों में शस्त्र धारण करने वाले वीर सैनिकों को अपनी जन्म भूमि की सदा ही रक्षा करनी चाहिए।

कृषीवलैः सैनिकभारवाहै
वृद्धैः किशोरै स्तरुणै र्धनाढ्यैः ।
अकिञ्चनै र्नायकनायिकाभिः
संवर्धनीया निजमातृभूमिः ॥ ९९ ॥

किसानों, सैनिकों, मजदूरों, बूढे, किशोर और तरुण मनुष्यों, धन-धान्य से सम्पन्न और निर्धन व्यक्तियों एवं देश व जनता के नायक व नायिकाओं के द्वारा अपनी मातृभूमि का सदा ही संवर्धन करना चाहिए।

वयं भारतीयाः सुनीरां सुपुण्याम्
समृद्धामुदारां सदा माननीयाम् ।
नरैर्देवगन्धर्वयक्षैः प्रगीताम्,
मनोभि र्वचोभि र्नमामो नमामः ॥ १०० ॥

हम सभी भारतीय पवित्र, स्वच्छ जलवाली, उदार, समृद्धिशालिनी, सदैव सम्मान करने योग्य, मनुष्यों, देव-गन्धर्व और यक्ष गणों के द्वारा प्रशंसा की गई, भारत माता को मन और वाणी से बार-बार नमन करते हैं।

राधापतेः कमलकोमलपादपद्मम्,
पादाम्बुजम् जनकराजसुतापतेश्च ।
गौरीपतेः पशुपतेश्चरणारबिन्दम्,
रक्षन्तु मां च मम काव्यमिदं च वाचम् ॥ १०१ ॥

राधापति भगवान् श्री कृष्ण के कमल के समान कोमल चरण कमल, राजा जनक की पुत्री सीता के पति भगवान श्री राम के पादार बिन्द और गौरी के पति, पशुपति भगवान शंकर के चरणाम्बुज मेरी, मेरे काव्य की एवं मेरी वाणी की रक्षा करें।

यत्कल्पितं यच्च मयानुभूतम्
द्रष्टञ्च यत्तत्त्विह वर्णितं वै ।
अन्यद्विशिष्टं यदवर्णितं तत्
जानन्तु वृद्धाः सुखदुःखभाजः ॥ १०२ ॥

जो कुछ भी कवि की कल्पना में आया और मेरे द्वारा अनुभव किया गया और देखा गया वह सब कुछ वहाँ वर्णित है। अन्य कोई विशिष्ट बात जो यहाँ वर्णित नहीं है, उस बात को सुख-दुःखों को भोगने वाले मान्य वृद्धजन स्वयं ही जान लें।

रचितं कृष्णदत्तेन, वार्धक्यशतकं हि यत्
तत्तु प्रपूर्णतां यातं, गुरुदेवप्रसादतः ॥

चतुर्थम्

भारवाह शतकम्

कृष्णदत्तः शर्मा शास्त्री

भूमिका—१

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

'**भारवाह शतकम्**' काव्य उपर्युक्त दया दाक्षिण्य, उदारता एवं दीन दुःखियों के प्रति सहानुभूति आदि धार्मिक भावों की मूलभित्ति पर आधारित भारतीय संस्कृति और आस्तिकता का प्रतीक है। उदारचेता सुकवि **पं०कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री** द्वारा प्रणीत प्रस्तुत शतक में सामाजिक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं धनपतियों की श्रमजीवियों के प्रति दुःसाहस पूर्ण शोषण प्रवृत्ति जन्य दशाएँ चित्रित की गई हैं।

कविवर **पं०कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री** ने अपनी प्रस्तुत कृति में ग्रामीण श्रमिकों की निर्धनता, दीनहीनता तथा शोचनीय मर्मस्पर्शी पीड़ित दशा के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए सविशद वर्णन किया है जो धनाढ्यों एवं प्रमत्त उद्योगपतियों का श्रमिकों के प्रति सहानुभूति पूर्ण ध्यान आकृष्ट करने के लिए सर्वथा प्रेरणा का स्रोत है। कवि ने श्रमिकों की सरलता, भावुकता, स्वामिभक्ति एवं स्वकर्तव्य परायणता का मनोरम पद्यों में चित्रांकन करते हुये धनलोलुप, स्वार्थी धनेशों को धूर्त तथा कुटिल कहकर उन्हें भविष्य में श्रमिकों को शोषित न करने के लिए चेतावनी दी है—

लोके वदन्ति मनुजाः बहुशः सदेत्थम्,
उद्घोषयन्ति सततं च महोच्चकण्ठैः।
लोके सदाश्रमकरा धनिकैः समर्थैः
संशोषिता बहुविधै, र्न तु शोषणीयाः॥

कवि की भारती उसकी अन्तर्मानसी अनुभूति को कविता के रूप में लोक के समक्ष प्रकट करके सहृदयों के हृदय का हार बनकर विराजती है। काव्य के मुख्यतम प्रयोजन '**सद्यः पर निर्वृत्तये**' के अनुसार काव्यसृजन से तत्काल ही ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यानन्द किं वा निः श्रेयस की सहजतया उपलब्धि स्वतः हो जाती है। अमरवाणी के सततताराधन एवं साहित्यिक सृजन से सुकवि सुधी **पं०कृष्णदत्त शास्त्री** की भारती विद्या की अधिष्ठात्री परमाराध्या माँ सरस्वती का शृगांर बन गई है।

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की दशा तथा परिस्थिति का कवि सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण, परीक्षण एवं समीक्षण करके जब आत्मसात करते हुए चिन्तन करता है तब अपनी नैसर्गिक काव्य प्रतिभा के द्वारा कविता के माध्यम से सामयिक वर्णन करता हुआ वह साहित्य का सृजन करता है। इसीलिए काव्यशास्त्र में कवि को प्रजापति की गौरवमयी संज्ञा से समलंकृत किया गया है—

'अपारे काव्य संसारे कवि रेकः प्रजापतिः।'

प्रस्तुत कृति में कवि ने श्रमजीवियों के कठोर परिश्रम की भूरि-भूरि प्रंशसा की है और उन के श्रम सीकरों को संसार की निखिल रम्यतम सम्प्रदाओं, सर्वोच्च

प्रासादों तथा सांसारिक जीवन के लिए महोपयोगी शस्य श्यामला प्राकृतिक छटाओं का मूलबीज बताकर प्रतिष्ठित किया है। श्रमिक ही अपने श्रम बिन्दुओं को इस कर्मभूमि में बोकर मुक्ताफलों को उत्पन्न करता है। जिसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करके **श्री शर्मा** ने श्रम का सच्चा स्वरूप अपने स्वर्णाक्षरों में निम्नवत् प्रदर्शित किया है—

प्रस्वेदमौक्तिकगणान् स्वशरीरजातान्
भालागतानविरतं करपल्लवेन।
संगृह्य शान्तमनसा निजकर्मभूम्यां,
नित्यं वपन्ति समुदं खलु भारवाहाः॥

इस रचना के अन्तर्गत मनीषी कवि **पं०कृष्ण दत्त शास्त्री** ने जहाँ सद्गुणी, कर्तव्य निष्ठ श्रमिकों का श्लाघनीय वर्णन करते हुए उन्हें सदैव विपत्ति के भुजंगों से सर्वथा सुरक्षित रहने वाले के रूप में निर्दिष्ट किया है वहीं दुर्व्यसनी प्रमादी श्रमिकों के दोषों का भी चिट्ठा उजागर किया है। जिससे वे भविष्य में अपने को एवं अपनी नई पीढ़ी के सुधार के लिए उन्हें मदिरापानादि व्यसनों के शिकार बनने से बचा सके। ऐसे प्रमत्त श्रमिकों को निम्न पद्यात्मक पँक्तियों के द्वारा सुकवि **शास्त्री** ने भाग्यहतक कहकर फटकारा है—

"स्वोपार्जितञ्च सकलं निजदैनिकान्नम्,
लुम्पन्ति भाग्यहतकाः समुपेक्ष्य पोष्यान्॥"

श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री की प्रस्तुत कृति '**भारवाह शतकम्**' का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर निष्कर्षतः यह ज्ञात होता है कि इस शतक में कवि की विलक्षण काव्य प्रतिभा स्वभावतः ही झलकती है। कवि की भारती इन का आश्रय प्राप्त कर के प्रायः सर्वविध अलंकारों से मण्डित होती हुई भारतीय संस्कृति एवं श्रमिक सेवा नियोजन किं वा सेवा सुरक्षा के आक्रामक अद्ययुगीन स्वचालित यान्त्रिक प्रयोग रूपी महिषासुर को पराभूत करने अथवा श्रमिकों की बेरोजगारी तथा श्रमपर होने वाले कुठाराघात का निवारण करने के लिए सिंह वाहिनी दुर्गा की भूमिका का निर्वाह करेगी। ऐसी मेरी मान्यता एवं विचारणा है।

कविवर **कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री** ने '**भारवाह शतकम्**' के अतिरिक्त **शैशव** शतकम्, **तारुण्य**शतकम्, **वार्धक्य**शतकम्. **कृषक**शतकम्, **सैनिक**शतकम् **पं०दीनदयाल** उपाध्याय शतकम् आदि की रचना करके श्री भर्तृहरि की शतक रचना परम्परा के अनुयायी कवियों की ऐतिहासिक एवं स्तुत्य श्रेणी में स्वतः आबध्य कर स्वनामधन्य एवम् अमर किया है। आपने प्रस्तुत रचना के सृजन से संस्कृत वाङ्मय के विकास एवं प्रसार तथा प्रचार में बड़ी ही प्रशंसनीय भूमिका निभाई है।

श्री कृष्णदत्त शर्मा शास्त्री की वाणी साक्षात् सरस्वती का शृगांर है। इन्होनें प्रस्तुत रचना में भारतीय ग्रामीण परम्पराओं, देवाराधन पद्धति तथा श्रमजीवियों का नितान्त सरलतापूर्ण व्यवहार एवं उनकी श्रम के प्रति अटूट श्रद्धा तथा निष्ठा आदि के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ ग्रामीण अंचलों में विराजमान शस्य सम्पदा की

मनोहारिणी छटा एवं प्राकृतिक शोभा और यथाक्रम षड्ऋतुओं के हृद्यात्मक पद्यों का प्रणनय किया है।

अस्तु, परम पिता परमात्मा से अन्ततः यही प्रार्थना एवं शुभाशंसना की जाती है कि सुकवि पं०कृष्णदत्त शर्मा शतायु पर्यन्त संस्कृत साहित्य की उत्तरोत्तर बुद्धि एवं प्रगति हेतु इसी प्रकार अनेकानेक काव्य सृजन करते हुए अपनी निर्मल कीर्ति पताका को त्रिलोकी में प्रसारित करते रहें।

विद्वद्वरेण्य, कवि कुलरत्न महामहिम अकादमियों से अनेक बार विद्वता-पुरस्कार प्राप्त श्री पं० कृष्ण दत्त शर्मा शास्त्री जी की 'भारवाह शतकम्' नामक काव्य रचना का आद्योपान्त अनुशीलन कर कवि की काव्य प्रतिभा तथा उदारभावना के प्रति श्रद्धावनत होते हुए प्रस्तुत कृति के अभिनन्दन में कतिपय सद्योविरचित पद्यप्रसून सादर सप्रश्रय प्रस्तुत हैं—

कृष्णदत्तेन यत्काव्यमालेखितम्
भारवाहाख्यशीर्षेण संशोभितम्।
हृद्यपद्यात्मकं चारुभावात्मकम्
दैन्यदूने जने नित्यकारुण्यकम्॥ १॥
वित्तहीनेषु हार्दैः सुसंवेलितम्,
ह्यस्य काव्ये दयाभक्तिसंराजितम्।
याऽत्र चोद्योगशीलेषु दुर्धर्षणा,
सार्थ दुःस्वामिनां वा भृशं भर्त्सना॥ २॥
ग्रामिणां कर्मिणां दीनतादुःखिनां,
दुःखदुःखै र्दयाभावसंवेष्टितम्।
यत्र ग्रामेषु या सात्विकी भावना
तत्र वावर्ण्यते नागरे स्वार्थना॥ ३॥
भक्ति-भागीरथी कर्मताहंसजा,
कर्मिणां बौद्धिकी युक्तिलोकेशजा।
शास्त्रिणः काव्यमेतत्तु तीर्थाटनं
तीर्थराजः प्रयागोऽत्र संदृश्यते॥ ४॥

मणिकुटीरम् वाई पास
कोसी कलाँ (मथुरा)
३-४-९६

डा० अभियचन्द्र शास्त्री 'सुधोन्दु'
एम० ए०, पी० एच-डी०, साहित्याचार्य
संस्कृत प्रवक्ता, हिन्दू इ० का० कोसी कलाँ (मथुरा)

भूमिका—२

संस्कृत साहित्य का प्रचलित अर्थ काव्य है, चाहे वह काव्यशास्त्र हो, या फिर श्रव्यकाव्य, दृश्यकाव्य। काव्यशास्त्र जहाँ लक्षण प्रदर्शक है, वहीं शेष दोनों लक्ष्य नियामक। इनमें भी दृश्यकाव्य रूपकोपरूपक में विभक्त है, जब कि श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि आते हैं।

खण्डकाव्य किंवा स्फुटकाव्यों का प्रणयन कब से प्रारम्भ हुआ, कहना कठिन है। फिर भी इतिहासकारों ने इसे ७वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ माना है। गीतिकाव्य (संदेश काव्य, लहरी काव्य, स्तोत्रकाव्य) चम्पूकाव्य, नीतिकाव्य (कथा, उपदेश), कथा-आख्यायिका, विरुद काव्य, सुभाषित आदि सब इन्हीं प्रकीर्ण काव्यों के अन्तर्गत आते हैं। वैसे तो वर्गीकरण करते-२ आचार्यों ने अन्योक्तिकाव्य, शास्त्रकाव्य, देवकाव्य, यमक व श्लेष काव्य, शृंगारी काव्य आदि कई भेद कर दिखाए हैं। पर यदि सूक्ष्म दृष्ट्या विचार किया जाय, तो ये सभी काव्य गीतिकाव्य के अन्तर्गत ही दिखाई देंगे। इसी प्रकार १०० से १५० पद्यों के लघुकाव्य को 'शतक' नाम देकर कई प्रकार से काव्यों की रचना की गई, जिनमें स्तुति, चरित्र, शृंगार, नीति, अनुभव, दृष्टिकोण आदि आधार बने।

कृषक, नेता, पण्डित, गुरु आदि सभी को आधार बनाकर भारतीय कवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा का विलक्षण परिचय दिया है। उन्हीं कवियों की पंक्ति में आते हैं कविवर पण्डित **श्री कृष्णदत्त शर्मा जी शास्त्री**, जिन्होनें एक ऐसी जीविका वाले चरित्र को ऊपर उठाया है, जो 'अहम्' होते हुए भी समाज के द्वारा उपेक्षित रहा है। कौन व्यक्ति या समाज होगा, जिसे भारवाह का प्रयोजन न हो। हर एक कदम पर भारवाह हमारी सहायता करता है, तभी तो कविवर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों का निवास भारवाहक में मानते हैं। इतना ही नहीं, इन्हें तो साक्षात् विष्णुरूप तक भी कह दिया है—**"राजन्त एवं सततं किल विष्णुरूपाः, परन्तु दुर्भाग्य है कि जीवन्ति ते जगति कीट पतङ्ग तुल्याः।"**

'भारवाह'-वाहक या वाहिक का पर्याय शब्द है, जिसे भारिन, भारिक या भारहार आदि कुछ भी नाम दे सकते हैं। लोकभाषा में 'कुली' या 'हम्माल' आदि इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। व्युत्पत्तिदृष्ट्या **"भारं वहति इति भारवाहः"**—ऐसा यह निष्पन्न होगा।

इनकी निर्धनता, दीनता और निर्मलता का जो चित्रण कवि ने किया है, उस वास्तविक स्वरूप को देखते हुए हृदय पिघल जाता है, आत्मा हिल जाती है। इनके साथ ग्राम में निवास करने वाले मानव, पशु-पक्षी, वृक्षादि जीव-निर्जीव पदार्थों पर शतक अनायास ही पाठक का ध्यान आकृष्ट कर लेता है। जबकि कवि की इस पंक्ति से रूह काँप जाती है—

"ते निर्धनाः श्रमकरा नितरां निरीहा
जाने न शीतसमयं गमयन्ति केन ?"

अपने उस समाज पर, जिन्होनें इन्हें हेय, उपेक्षित और छोटा माना है—

"वन्द्या इमे श्रमसुता न कदापि हेया
हेयास्तु सन्ति नियतं धनिकास्त एव।
ये भुञ्जते प्रतिफलं श्रमपुत्रकाणाम्
जीवन्ति ये च नितरां परपिण्डतुष्टाः॥"

हमारा वह समाज, हमारे वे भाई भला, कैसे उपेक्षित हो सकते हैं, कैसे हेय और छोटे हो सकते हैं—

"येषां श्रमेण सकलं जगदस्ति रम्यम्,
येषां बलेन मनुजाः सुखमाप्नुवन्ति।
येषां बलेन वसुधा वसुधा सदैव,
तेषां गुणान् कथय को वदितुं समर्थः॥१॥"

कविवर श्री शास्त्री जी ने इस शतक में 'बीड़ी', 'होली', 'झुग्गी' जैसे लोक प्रचलित शब्दों को देकर जहाँ पाठकों के मन में पढ़ने की रोचकता ला दी है, वहीं उन्होनें इस शतक की सरल, सुबोध शैली में रचना कर संस्कृत न जानने वालों के लिये भी पढ़ने का अवसर प्रदान किया हैं। अज्ञ और अल्पज्ञ भी इसे पढ़कर आनन्द लाभ ले सकते हैं। रचना भले 'स्वान्तः सुखाय' ही क्यों न हो, लेकिन वही रचना सच्ची रचना है, स्थायी रचना है, जो जनसामान्य के हृदय पटल तक उतरने की क्षमता रखती हो। ऐसी ही रचना है "भारवाहशतक", जो शास्त्रज्ञ 'पण्डित' के लिये भी लिखा गया है और मृद्माण्डजीवि 'पण्डित' के लिये भी।

काव्य में यदि छन्द, अलंकार रीति किंवा प्रवाह आदि विराजमान हों, सहृदय मानव के हृदय पट को खोलने की शक्ति हो, तो वह काव्य अवश्यमेव स्थायी बन जाता है। "पुष्पोपहार नमिता हरिता लताश्च", "कुर्वन्ति कार्यमपि ते कठिनं कठोरम्" आदि ऐसे ही वाक्यों से भरा-पुरा "भारवाह शतकम्" सुतरां स्थायी काव्य का अधिकारी है। जिस कारण हम कवि एवं कवि-कृति की हार्दिक मगंलकामना करते हैं—

श्रद्धेय श्री शर्मा जी की रचना के सम्बन्ध में बस इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि-

"अमृतं मृतकेन लभ्यते मधुनोऽप्येकरसत्व दूषणम्।
अधरं मधुरन्न कर्णयोरनुलन्ते रचनं विभावये॥"

अर्थात् आपकी रचना-माधुर्य की तुलना किससे की जाय ? 'अमृत' का माधुर्य प्रख्यात तो है, पर उसमें दोष है कि बिना दिवगंत हुए वह प्राप्त नहीं होता। 'शहद' की मधुरता का रसास्वादन जिह्वा बहुत देर तक नहीं कर पाती, इसलिए वह भी दोषयुक्त है। 'अधर' का माधुर्य सुविदित तो है, पर श्रवणेन्द्रिय के लिये उसकी कोई उपयोगिता नहीं। अतएव शर्माजी की रचना हमारी दृष्टि में अतुलनीय है।

राजीवगान्धी केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
श्रृंगेरी (चिकमंगलुर) कर्नाटक
वैशाख शुक्ल-१२, से २०५३

विदुषामनुचरः
डा० उदय नाथ 'झा' अशोक
व्याख्याता सहअध्यक्ष (साहित्य विभाग)

"भारवाह-शतकम्"

देवत्रयं नमस्कृत्य,सिद्धिदं गणनायकम् ।
शारदां ज्ञानदां नत्वा,नौमि पितृन् गुरून् बुधान् ॥

*　　*　　*

श्रीदेव ! मा हस विलोक्य जनान् दरिद्राँस्,
ते चापि सन्ति तनया जगदीश्वरस्य ।
मन्ये त्वयोद्यमपि वाक्यमिदं ससारम्,
'ते' सन्ति निर्धनजना मलिना दरिद्राः ॥१ ॥

श्री लक्षमी को ही सब कुछ मानने वाले हे मित्र ! उन निर्धन मनुष्यों को देखकर तू उन का उपहास मत कर वे भी तो उसी ईश्वर की सन्तान हैं । मैं तेरे इस वाक्य को सारयुक्त मानता हूँ कि वे गन्दे हैं,दरिद्र हैं और धनहीन हैं ।

सत्यं तवास्ति विपुलं धनधान्यजातम्,
लब्धं त्वया धनवतां सुकुलेऽपि जन्म ।
लोके परं नदजलं धनयौवनानि,
नूनं प्रयान्ति पुनरागमनाय नैव ॥२ ॥

हे मित्र ! यह बात सत्य है कि तेर पास विपुल धन सम्पति है और तूने धनवानों के बड़े सम्भ्रान्त कुल में जन्म लिया है,परन्तु मित्र इस संसार में नदी का जल,धन और यौवन आदि निश्चय ही एक बार जाकर फिर दोबारा कभी नहीं लौटते ।

यद्यत् कृतं सुमनुजेन पुरैव तत्तत्,
सत्यं ध्रुवं सुफलतीह न संशयोऽस्मिन् ।
प्राक्येनयत् सुकृतमाचरितं हि किञ्चित्
तद्भुज्यते जगति कर्मफलं जनेन ॥३ ॥

हे मित्र ! मनुष्य के द्वारा पहले जो जो भी कर्म किए गए हैं,वे सभी कर्म इस लोक में निश्चित ही फलते हैं,इसमें कोई संदेह नहीं है । जिसके द्वारा पूर्व जन्म में जैसा भी अच्छा या बुरा आचरण अथवा कर्म किया गया है उस कर्म का फल उस मनुष्य के द्वारा अवश्य ही इस लोक में भोगना पड़ता है । कर्म फल को टाला नहीं जा सकता ।

आपो यथा हि सरितां प्रवहन्ति नित्यम्,
सम्पत्तयोऽपि सततं किल मानुषाणाम्।
नूनं धनानि सकलानि सुखानि यानि,
तान्यत्र सन्ति नितरां क्षणभंगुराणि ॥४ ॥

हे मित्र ! जिस प्रकार नदियों के जल निरन्तर हर समय बहते रहते हैं उसी प्रकार मनुष्यों की अर्जित सम्पत्तियाँ भी निरन्तर हस्तान्तरित होती रहती हैं। मनुष्य को प्राप्त होने वाले जितने भी धन और सुख वैभव हैं वे सभी इस संसार में पूर्ण रूप से क्षणभंगुर हैं। इनका गर्व नहीं करना चाहिए।

दारिद्र्यपापनिहतोऽपि गुणस्तु दोषो,
वित्तेषु दुर्गुणचयोऽपि भवत्यदोषः।
नैर्धन्यपाशपतितो धनवान्नरोऽपि,
नाप्नोति मानपदकीर्तियशोप्रतिष्ठाः ॥५ ॥

हे मित्र ! दरिद्रता रूपी पाप से प्रताड़ित गुण भी दोष बन जाता है जबकि धनवानों में अनेक दुर्गुण भी उनके सद्गुण ही माने जाने लगते हैं। निर्धनता के चगुंल में फँसा हुआ बड़े से बड़ा धनवान व्यक्ति भी समाज में अपनी पहले जैसी मान पद कीर्ति यश और सत्प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाता।

ब्रह्मा जगद् रचयिता प्रपितामहो यो,
नारायणः सकलसृष्टिनियामको यः।
चण्डीपति स्त्रिनयनः प्रलयंकरो य,
एते वसन्ति सततं किल भारवाहे ॥६ ॥

इस समस्त चराचर जगत की रचना करने वाला ब्रह्मा जो सभी का परदादा कहा जाता है, समस्त सृष्टि का नियमित रूप से पालन-पोषण करने वाला जो नारायण भगवान विष्णु है तथा त्रिनेत्र धारी, समस्त चराचर जगत का प्रलय करने वाले, चण्डिका पति भगवान शंकर हैं वे तीनों ही निश्चित रूप से गरीब मजदूर के रूप में यहाँ निवास करते हैं।

प्रासादहर्म्यपरिखा जलसाधनानि,
नानागृहोपकरणानि च मन्दिराणि।
नित्यं सृजन्ति सकलान्यपि भारबाहा
एतेष्वतो निवसति प्रपितामहोऽजः ॥७ ॥

बडे-बड़े विशाल महल अट्टालिकाएँ विशाल खाइयाँ जल के अनेक साधन नहर, कुए, तालाब बाँध आदि प्रत्येक घर में उपयोग में आने वाले अनेक सामान एवं भवन आदि सभी कार्यो को ये निर्धन, परिश्रम करने वाले मजदूर ही रचते हैं। इसीलिए इन मजदूरों में जगत्स्रष्टा जगत् का परदादा कहा जाने वाला अज (ब्रहा) निवास करता है।

गेहानि सौख्यधनवैभवसम्पदश्च,
रक्षन्ति नित्यमपि ते तु महाजनानाम्।
द्वारस्थिताः स्वधनदं बहुसेवमाना
राजन्त एव सततं किल विष्णुरूपाः ॥८॥

ये ही मजदूर अपने रोजी-रोटी देने वाले स्वामी की बहुत तरह से सेवा करते हुए उसके द्वार पर पहरे दार बने हुए महाजनों के घरों की धन वैभव सम्पत्ति एवं घरों की रक्षा करते हैं। उस समय इन मजदूरों के रूप में वह विष्णु ही विराजमान होता है

लोके यदा किमपि जीर्णतमञ्च पक्वम्
सौधं सुगेहमथवा भवनं विशीर्णम्।
विध्वंसको भवति कोऽपि च भारवाहस्,
तस्मिंसदा निवसति प्रलयंकरोऽसौ ॥ ९ ॥

इस जगत में किसी भी बहुत पुराने और जीर्ण-शीर्ण महल को, किसी घर को अथवा टूटे-फूटे भवन को, जब कभी कोई मजदूर तोड़ फोड़ कर विसमार करता है तो उस मजदूर में वे प्रलयंकर भगवान शिव ही निवास करते हैं।

नास्ति स्थलं किमपि यत्र न ते भवेयुः
पश्येर्यदि त्वमपि तान् सरलस्वभावान्।
सर्वत्र सन्ति सुलभाः श्रमकर्मलीना
मान्याः सदा सुहृदयै र्न तु गर्हणीयाः ॥ १० ॥

हे मित्र ! यदि तू भी उन सरल स्वभाव वाले मजदूरों को ध्यान से देखे तो यही पायेगा कि इस भूमि पर ऐसा एक भी स्थल नहीं है जहाँ ये मजदूर न हों। श्रम के कामों में व्यस्त रहने वाले ये श्रमिक सभी जगह मिल जाते हैं। ये श्रमशील मजदूर सदा ही सम्मान किए जाने योग्य हैं न कि निन्दा या उपेक्षा किए जाने योग्य।

एषां सुताश्च तनयाः किल हीनशिक्षाः,
कुर्वन्ति कर्म सततं पितरो यदेषाम्।
अप्राप्तसाधनधनाः शिशवो निरीहा,
जीवन्ति ते जगति कीटपतंगतुल्याः ॥ ११ ॥

इन भारवाहों के पुत्र एवं पुत्रियाँ बिना शिक्षा प्राप्त किए हुए ही निश्चित ही वह काम करते हैं जो काम उन के माता पिता करते हैं। साधन और धनहीन बेचारे बच्चे इस लोक में अपना जीवन उसी प्रकार बिताते हैं जिस प्रकार कीड़े मकोड़े और पंतगें बिताते हैं।

प्राह्लादकं सुखकरं च मनोहरं यद्
रम्यञ्च नेत्रसुखदं खलु दर्शनीयम्।
यद् वस्तुजातमतिचारुतरं च तत्तल्
लोके लसन्ति सततं श्रमबिन्दुजालैः ॥ १२ ॥

जो कुछ भी प्रसन्नता प्रदान करने वाला, सुख प्रदान करने वाला मन को हरने वाला, रमणीय, नेत्रों को सुख प्रदान करने वाला दर्शनीय और सुन्दरतम वस्तु समूह है वह सब इस जगत में मजदूरों के शरीर से निकले पसीने की बूँदों के फलस्वरूप इतना सुन्दर लगता है।

प्रस्वेदमौक्तिकगणान् स्वशरीरजातान्,
भालागतानविरतं करपल्लवेन।
संगृह्य शान्तमनसा निजकर्मभूम्याम्,
नित्यं वपन्ति समुदं खलु भारवाहाः ॥ १३ ॥

अपने शरीर से तथा माथे पर आये हुए पसीने रूपी मोतियों के समूह को अपने हाथों से एकत्र कर बड़े ही शान्त मन से अपनी कर्मभूमि में ये भारवाह प्रसन्नतापूर्वक नित्य ही बोते रहते हैं।

प्रासाददुर्गभवनानि जलाशयाश्च,
पुष्पोपहारनमिता हरिता लताश्च।
उद्यानभूतलगतानि च शाद्वलानि,
विद्धि प्रिय ! प्रतिफलं श्रम मौक्तिकानाम् ॥१४ ॥

हे प्रिय ! मित्र ! बड़े-बड़े राजमहल, किले, विशाल भवन और बाँध सरोवर आदि जलाशय, सुन्दर-सुन्दर फूलों के उपहारों से झुकी हुई हरी-भरी लताएँ, मनोहर उपवनों के हरे भरे घास के मैदान आदि ये सभी भारवाहों के परिश्रम से निकले पसीने का ही प्रतिफल हैं।

सौधं विशालमपि ते सुमनोहरं यत्,
वस्तूनि यानि सुखदानि गृहस्थितानि।
दृष्ट्वा सदानुभवसि त्वमपि प्रतुष्टिम्,
सर्वाणि तानि नियतं श्रमसीकरेभ्यः ॥ १५ ॥

हे मित्र ! तेरा यह अति मनोहर विशाल महल और कोठी भी और तेरे घर में उपयोग में आने वाली जितनी भी सुखप्रदान करने वाली वस्तुएँ हैं वे सब भी जिन्हें देख-कर तू आत्मिक प्रसन्नता अनुभव करता है वे सभी वस्तुएँ निश्चित ही भारवाहों के परिश्रम से निकले पसीने का ही परिणाम है।

ब्राह्मे मुहूर्तसमये निजजीविकार्थं,
नित्यं सदारतनया अदनं गृहीत्वा।
निर्यान्ति पर्णचयनिर्मितगेहगर्भात्,
कुर्वन्ति कार्यमपिते कठिनं कठोरम्॥ १६॥

ये भारवाह (मजदूर/श्रमिक) नित्य प्रति अपने बाल-बच्चों को साथ लिए हुए दोपहर के समय खाने के लिए अपने अपने भोजन को लेकर, दिन निकलने से पूर्व ब्राह्म मुहूर्त में ही अपनी रोजी रोटी के लिए, घास फूस व पत्तों के बने घरों (झोपड़ियों) से निकल पड़ते हैं और सारे दिन कठिन और दुष्कर कार्य करने में लगे रहते हैं।

जानन्ति नेदमपि ते प्रभुवन्दनं किम्,
पूजाविधिस्तवनचन्दनसेवनं किम्।
माल्यार्पणं मधुरभोजनमस्ति किम् वा,
ते पूजयन्ति सततं श्रमदेवमेकम्॥ १७॥

श्रमदेव की उपासना में लगे रहने वाले ये भारवाह/श्रमिक यह भी नहीं जानते कि ईश्वर की वन्दना क्या होती है। वे यह भी नहीं जानते कि पूजा की विधि क्या है, प्रार्थना क्या होती है, भगवान को चन्दन आदि किस प्रकार लगाया जाता है वे तो बेचारे रात-दिन निरन्तर श्रमदेव की पूजा करना ही जानते हैं।

पाथोधिनीरनिवसन् सुविशालकायो
मीनो यथात्ति सबलं लघुकायमीनान्।
धूर्तास्तथा श्रमकराः श्रमिकाननेकान्,
आत्मीयबन्धुकथितानपि वंचयन्ति॥ १८॥

जिस प्रकार गहरे समुद्र जल में रहने वाली विशालकाय बड़ी मछली छोटी-छोटी मछलियों को बल पूर्वक खा जाती है उसी प्रकार कुछ धूर्त व चालाक मजदूर नेता, अपने बन्धु कहे जाने वाले अनेक श्रमिकों को ठगते ही रहते हैं।

ये भारवाहतनयाः किल पाठनीयास्
ते चापि कोमलधियो जनकैः स्वकीयैः।
साकं प्रयान्ति कठिनं श्रममाचरन्तो
जानन्ति नेदमपि तेऽध्ययनं किमस्ति॥ १९॥

श्रमिकों के जो बालक निश्चित रूप से पढाए जाने योग्य है कोमल बुद्धि वाले वे बालक भी अपने माता-पिता के साथ काम पर जाते हैं और कठिन परिश्रम करते हुए वे बेचारे इतना भी नहीं जान पाते कि पढ़ना किसे कहते हैं।

वांछन्ति तेऽपि सततं तनया हि तेषाम्,
शिक्षामवाप्य महतीं सधना भवेयुः।
विद्यावतां धनवतां गुणिनां समाजे,
कीर्तिं यशःसुविपुलं पदमाप्नुयुश्च ॥ २० ॥

निर्धनता के दुःख को भोगने वाले वे मजदूर भी सदा यही चाहते हैं कि उनके बच्चे भी ऊँची शिक्षा प्राप्त कर के धनवान बनें और विद्याप्राप्त शिक्षित मनुष्यों धनवानों और गुणी व्यक्तियों के समाज में कीर्ति यश और ऊँचा पद प्राप्त करें।

ग्रीष्मे प्रचण्डवृषभानुकरार्तदेहाः,
प्रस्वेदविन्दुकणशोभितनग्नदेहाः।
आस्थाय पादपतले त्ववकाशकाले
खादन्ति नित्यमदनं च पिबन्ति नीरम् ॥ २१ ॥

गर्मी के दिनों में बैसाख और ज्येष्ठ के महीने में सूर्य की प्रचण्ड किरणों से जलते हुए शरीर वाले और पसीने की बूंदों के समूह से लथपथ शरीर वाले श्रमशील मजदूर दोपहर को भोजन के अवकाश के समय किसी वृक्ष के नीचे बैठकर अपने-अपने परिवार के साथ लाया हुआ खाना खाते हैं और जल पीते हैं।

प्रच्छायशीतलतलं सुखदं विभाव्य,
श्रान्तिं नियोगजनितामपहातुकामाः।
सर्वे समेत्य ससुखं ससखाः सपुत्रा,
मध्यावकाशसमये समुदं लपन्ते ॥ २२ ॥

गहन छाया को अत्यधिक शीतल और सुखदायक जान कर अपने काम के कारण हुई थकान को दूर करने की इच्छा वाले सारे श्रमिक अपने अपने साथी मित्रों व पुत्र आदि के साथ इकट्ठे होकर मध्यावकाश के समय सुखपूर्वक बड़े आनन्द के साथ बतियाते रहते हैं।

केचित्तमालदलचूर्णमयं पदार्थम्,
आस्वादयन्ति समुदं सह मित्रवर्गैः।
'बीडी' ति लोकप्रथितां सुलभां सदैव,
प्रज्वाल्य धूममपिते प्रबलं श्वसन्ति ॥ २३ ॥

पेड़ की गहन छाया में विश्राम करते हुए कुछ मजदूर तो तम्बाखु के पत्तों के चूर्ण से बने विशेष पदार्थ का अपने मित्रों के साथ मिलजुल कर आनन्द से स्वाद लेते रहते हैं और कुछ सब जगह आसानी से मिलने वाली 'बीड़ी' कहे जाने वाली चीज को जलाकर पीते हैं और बीड़ी के धुएँ को तेजी से, पीते हैं और बाहर फेंकते हैं।

संधाय पर्णतृणकीचकदारुखण्डान्,
निर्माय नित्यमुटजानि मनोहराणि।
तुष्टा बसन्ति समुदं विगतस्पृहास्ते,
प्रासादजन्यसुखवैभवमालभन्ते ॥ २४ ॥

दुःख-सुख व अन्य आरामदायक साधनों की परवाह न करने वाले वे श्रमिक, पत्ते, तिनके (घास-फूँस) बाँस और लकड़ियों को जोड़ कर और सुन्दर तथा आर्कषक झोंपड़ियाँ बनाकर प्रसन्नता पूर्वक उनमें रहते हैं और उन झोपड़ियों में रहते हुए महलों में होने वाले सुख और वैभव का आनन्द अनुभव करते हैं।

ग्रामेषु नापितमहत्तरतन्तुवाया
उद्यानपालककहारकृषीवलाश्च।
मृद्भाण्डजीविरजका किल तक्षकाश्च,
सर्वे वसन्ति सहजाः पटरञ्जकाश्च ॥ २५ ॥

गांवों में नाई, मेहतर, जुलाहे, माली, कुम्हार, किसान, कहार, धोबी एवं बढ़ई तथा रंगरेज आदि सभी सहज प्रेम के साथ मिलजुलकर निवास करते हैं।

तत्रैव तैलिकमहीसुरसौचिकाश्च,
राजन्यवैश्यकुलजा खलु लौहकाराः।
सौवर्णिकाश्च भिषजो वहुशिल्पकारा,
अन्ये जना हरिजनाश्च मुदा वसन्ति ॥ २६ ॥

उन्हीं गांवों में तेली, ब्राह्मण, दर्जी, क्षत्रिय, वैश्य कुल में जन्म लेने वाले, लोहे का काम करने वाले, सुनार, वैद्य, कारीगर एवं कलाकार तथा दूसरे और मनुष्य एवं हरिजन सभी बड़े प्रेम के साथ निवास करते हैं।

ग्रामेषु काकशुकुकोकिलकुक्कुटाश्च
पारावताश्च चटका वकवर्तिकाश्च।
चिल्लाश्च चातकमयूरसुसारिकाश्च,
अन्ये वसन्ति वहवोऽपि खगाः सदैव ॥ २९ ॥

भारत के गांवों में कौए, तोते, कोयल, मुर्गे, कबूतर, चिड़िया, बगुले, बत्तख, चील, चातक, मोर, मैना आदि तथा और दूसरे पक्षी भी सदा ही निवास किया करते हैं।

ओत्वांखुधेनुवृषभा महिषा महिष्यो
ह्यजैडकानकुलगर्दभसारमेयाः ।
शाखामृगोष्ट्रमृगपीवरशूकराश्च,
अर्वाश्रृगालशशका निवसन्ति चात्र ॥ २८ ॥

इन गांवो में बिल्ली, चूहे, गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़, नेवले, गधे, कुत्ते, बन्दर, ऊँट, सूअर, घोड़े, गीदड़ खरगोश एवं अन्य दूसरे पालतु पशु भी रहते हैं।

वृक्षेषु चात्र वहवः सुविशिष्टवृक्षा
न्यग्रोधनिम्बबदरीपनसाः रसालाः ।
अश्वत्थबिल्वकदलीमधुशिंशपाश्च,
छायाप्रदाश्च फलदा विलसन्ति नित्यम् ॥ २९ ॥

गांवों में अनेक विशिष्ट वृक्ष जैसे बढ़, नीम, बेरी, कटहल, आम, पीपल, शीशम, बेल एवं केले बहुतायत से मिलते हैं। ये छाया और फल देने वाले वृक्ष गांवों में सदैव मिला करते हैं।

ग्रामाद् वहिश्च भवदुःखविनाशिकाया,
देव्या मठोऽपि महिषासुरघातिकायाः ।
ग्रामस्य सर्वजनजीवनरक्षिकायाः,
संस्थाप्यते कुशलवृद्धजनैरवश्यम् ॥ ३० ॥

जब कोई गांव बसता है तो व्यवहार कुशल, सामाजिक, अनुभवी वृद्ध व्यक्तियों के द्वारा गांव से बाहर सांसारिक दुःखों का विनाश करने वाली महिषासुर का संहार करने वाली गांव खेड़े के सभी जनों के जीवन की रक्षा करने वाली चण्डी देवी के मठ की स्थापना अवश्य की जाती थी।

गौरीपतिः पशुपतिः प्रलयंकरो यो
गंगाधरः शशिधरो वृषभध्वजो यः ।
देवालयेषु सततं शिवशक्तिभक्तैः
पत्रै र्जलैः सुकुसुमै र्ननु पूज्यतेऽ सौ ॥ ३१ ॥

प्रत्येक छोटे से भी छोटे गांव में भगवान शंकर व उनकी शक्ति के उपासक भक्तजनों के द्वारा, भगवती गौरी के स्वामी, पशुपति सृष्टि को प्रलय रूप में परिवर्तित कर देने वाले, गंगा और चन्द्रमा को अपने सिर पर धारण करने वाले, बैल को अपनी ध्वज पर स्थान देने वाले, भगवान शिव, शिवालयों में सदा ही पत्र पुष्प और जलों से पूजे जाते हैं।

यत्राऽस्ति देवसदनं सदनस्थितोऽ सौ,
भक्तैस्तु तत्र समुदं परिपूज्यते हि।
कश्चिन्मठो न यदि तत्र तु यत्र तत्र,
अश्वत्थमूलपतितो नृभिरर्च्यतेऽ सौ ॥ ३२ ॥

जिस गांव में शिवालय है वहां तो मन्दिर में पधराए हुए वे शंकर भक्तों के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूजे जाते हैं परन्तु यदि कहीं कोई मठ या मन्दिर नहीं होता तो वहां जहां-तहाँ पीपल के पेड़ के नीचे पधराई हुई शिव पिण्डी ही मनुष्यों के द्वारा पूजी जाती है।

श्रीरामकृष्णशिवमारुतपुत्रदुर्गाः
पूज्या यथा भरतवशंनृणां प्रपूज्याः।
वन्द्यास्तथा गुरुजना पुरुषा महान्तः,
सन्तीह नित्यमपि चान्यमतानुगाश्च ॥ ३३ ॥

अपने गाँवों में जिस प्रकार भरतवंश में जन्म लेने वाले भारतीय हिन्दुओ के पूज्य श्री राम, कृष्ण, शिव, हनुमान एवं दुर्गा आदि पूजनीय हैं उसी प्रकार दूसरे भक्तों को मानने वाले महापुरुष गुरुजन नित्य ही वन्दनीय हैं। किसी के भी प्रति किसी का कैसा भी भेदभाव नहीं है।

सर्वे वयं सुतनया निजमातृभूमेर्,
नास्त्यत्र कोऽपि यवनो न च जैनसिक्खः।
ये केऽपि चात्र मनुजा निवसन्ति देशे,
ते भ्रातरो न हि परे, स्व सहोदरास्ते ॥ ३४ ॥

हम सभी अपनी मातृभूमि के योग्य सुपुत्र हैं। यहाँ पर न तो कोई यवन है, न जैन है और न ही कोई सिक्ख है। इस देश में जो कोई भी मनुष्य रह रहे हैं वे सभी भाई भाई हैं दूसरे नहीं है वे तो सभी सगे माजाए भाई हैं।

पुण्यां महीं मलयगन्धयुतां सुनीराम्,
मुक्तिप्रदां सुरगणै र्नितरामभीष्टाम्।
मान्यां हि भारतधरामृतुचक्रमेकम्,
आयाति चात्र नितरां प्रविभूषणाय ॥ ३५ ॥

मलय पर्वत से आने वाली सुगन्ध से युक्त, अच्छे जलों वाली, मुक्ति प्रदान करने वाली, देवताओं के द्वारा सदा चाही जाने वाली, पवित्र, सम्मान किये जाने योग्य, इस भारतभूमि को सभी तरह से अलंकृत करने के लिए यहाँ छः ऋतुओं का एक चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

प्रक्षीणकान्तिमखिलां प्रकृतिं विपन्नाम्
रूपान्वितां हरितपत्रचयैः प्रवृद्धाम् ।
पुष्पान्वितां सकलचित्तहरां विधित्सु
रायाति सर्वसुखदः प्रथमो वसन्तः ॥ ३६ ॥

वृक्षों के पत्रविहीन हो जाने के कारण सौन्दर्य हीन वनी सम्पूर्ण प्रकृति को, सुरूपवती, हरे-हरे नवोद्गत पत्तों से सजी-बजी, सभी प्रकार के पुष्पों से लदी हुई, समस्त लोकों के प्राणियों के चित्त को हरने वाली बनाने की कामना वाला, सभी प्राणियों को सभी तरह से सुख प्रदान करने वाला, सबसे पहले बसन्त आता है ।

अस्मिन् बसन्तसमये जगति प्रसिद्धम्
'होली' ति पर्व जनमानसमोदसिद्धम् ।
आमोदनीरनिधिवारितरंगमग्नै
रायोज्यते सुरसिकै र्विविधैः प्रकारैः ॥ ३९ ॥

इस वसन्त ऋतु के समय, जनमानस को आमोद प्रमोद से भर देने वाला, होली नाम से जाना जाने वाला, पूरे जगत में प्रसिद्ध पर्व भी आता है । यह पर्व आमोद-प्रमोद के समुद्र जल की तरंगों में मग्न रहने वाले रसिक जनों के द्वारा विविध प्रकारों से मनाया जाता है ।

रात्रौ समेत्य समुदं सह मित्रवर्गैर्
वाद्यानि कर्णमधुराणि च वादयन्तः ।
विस्मृत्य तत्र सुखदुःखविषादहर्षम्
गायन्ति गानरसिका युवकास्तु 'होली' ॥ ३८ ॥

इस वसन्त ऋतु में होली का पर्व निकट आ जाने पर रसिक जन रात्रि में एकत्र होकर बड़ी प्रसन्नता से अपने मित्रों के साथ कानों को सुहावने लगने वाले वाद्य यन्त्रों (ढोल, नगाड़े, ढप्प, झांझ, घड़ियाल आदि) को बजाते हुए, जीवन के सुख-दुःख और हर्ष विषाद को भुलाकर गाने के रसिक, युवक श्रमिक 'होली' गाया करते हैं ।

रम्या विभान्ति सुखदा रजनीशकान्ताः,
राकारिपुर्दिनमणिः प्रतिभाति रम्याः ।
रम्यश्च वाति सततं सुखदः समीरः,
सर्वं विभाति सरसं मधुमासकाले ॥ ३९ ॥

इस वसन्त ऋतु में रात्रियाँ बड़ी ही मनोरम और सुख दायक लगती है । रात्रि का वैरी सूर्य भी अब अच्छा लगने लगता है । निरन्तर सुख देने वाली शीतल, मन्द, सुगन्ध, युक्त पवन भी सुन्दर लगने लगती है । हे मित्र । इस वसन्त काल में तो सभी कुछ सरस और अच्छा लगने लगता है ।

देशे सदा प्रकृतिरत्र नटीव मुग्धा
स्वाभाविकीं च सुषमां सुखदां दधाना।
हावैश्च नर्मवचनैः कुशला नवोढा,
स्वाभीष्टपात्रमनुकूलयतीह नित्यम् ॥ ४० ॥

भारतवर्ष में सदा ही अपनी स्वाभाविक, सुखद सुन्दरता को धारण करने वाली प्रकृति अपने अभीष्ट स्थान को उसी प्रकार अपने अनुकूल बनाती रहती है जिस प्रकार कोई कुशल, भोली भाली दीखने वाली, नव विवाहिता नारी अपने सहज सौन्दर्य को अधिक आकर्षक बनाती हुई अपने हाव-भाव एवं नर्म वचनों से अपने अभीष्ट जन को अपने अनुकूल बनाया करती है।

प्रातः रसालतरुमादकमञ्जरीणा
माघ्राय गन्धमपि कोकिलबालवृन्दः।
तारस्वरेण मधुरं मधुरं विरौति,
श्रुत्वा च कोकिलरवं प्रमदास्त्रपन्ते ॥ ४१ ॥

प्रातःकाल आमों की मादक मञ्जरियों की गन्ध को सूँघ कर कोयल व कोयल के बच्चों का समूह ऊंचे स्वर में मधुर मधुर गाता है तो कोयल की कल कूजन सुन कर प्रमदा नारियों को कष्ट होने लगता है।

वासन्तिकं सुखकरं समयं ह्यवाप्य
भस्मावशेषमदनो युवतीश्च यूनः।
सन्धाय पंचविशिखान् स च पंचबाणो
लक्ष्यीकरोति सततं मधुमासकाले ॥ ४२ ॥

बसन्त कालीन सुखद समय को अपने अनुकूल पाकर, भगवान शंकर के कोपानल से भस्म हुए शरीर वाला, पाँच प्रकार के वाणों से प्रहार करने वाला, कामदेव अपने धुनष पर पाँचों वाणों को चढ़ाकर युवती और युवकों को इस सुन्दर बसन्त काल में अपना निशाना बनाया करता है।

सम्मोहिताः कुसुमगन्धचयैः प्रगाढैः
कामप्रभावविवशा मदनार्तचित्ताः।
नार्यो विलाससुभगा मधुमासकाले,
स्वान् स्वान् प्रियान् सुरसिकानुपयान्ति मुग्धाः ॥ ४३ ॥

विविध प्रकार के फूलों की प्रगाढ़ गन्ध से सम्मोहित हुई, कामदेव के प्रभाव के कारण विवश और व्याकुल चित्तवाली, विलास में सुख अनुभव करने वाली, मुग्धा रमणियाँ इस वसन्त ऋतु में अपने-अपने प्रिय, रसिक जनों के पास पहुँचने लगती हैं।

याते वसन्तसमये सकलं विचित्रम्,
क्षीणा भवन्ति सरितो रविपीततोयाः।
मार्तण्डचण्डकिरणै र्धरिणी प्रचण्डा,
उष्णाः प्रवान्ति पवना नितरामसह्याः॥ ४४॥

वसन्त ऋतु के बीत जाने पर चारों तरफ सब कुछ विचित्र सा हो जाता है। सूर्य की किरणों के द्वारा पिए गए जल वाली नदियाँ बहुत ही क्षीण (कम) जल वाली हो गई हैं। सूर्य की चण्ड किरणों से तपी हुई धरती अत्यधिक गर्म हुई प्रचण्ड बन रही है और अति असह्य गर्म हवा (लू) चलने लगी है।

भूमिर्वसन्तकुसुमाभरणै र्विहीना,
भूता तथाऽत्र विरसा विधवा यथा स्यात्।
ज्येष्ठं विलोक्य तरुणी त्रपते नवोढा
ज्येष्ठं विभाव्य वसुधाऽपि जहाति मादम्॥ ४५॥

वसन्त ऋतु में चारों तरफ खिलने वाले रंग बिरंगे फूलों के गहनों से विहीन हुई भूमि उस प्रकार विरस हो गई है जैसे कोई विधवा स्त्री हो। नवविवाहिता युवती अपने जेठ को देखकर सदा ही लजाया करती है इसीलिए ज्येष्ठ को आता हुआ जान कर भूमि ने भी अपनी मादकता का त्याग कर दिया है।

प्रेङ्खैः झरैश्च हिमशीतलनीरजालैश्
चण्डांशुरश्मिनिचयः प्रतिवारितोऽपि।
गृह्णाति लोकमनुजान् गृहसंस्थिताँस्तान्,
ये सन्ति कोमलकराः सुखलाषुकाश्च॥ ४६॥

पंखों, फब्बारों एवं बर्फ से शीतल जल कणों से दूर की जाती हुई भी प्रचण्ड सूर्य की तेज किरणों का समूह (प्रभाव) घरों में बन्द हुए, आराम करते हुए उन सांसारिक मनुष्यों को हठात् प्रभावित करता है जो आराम पसन्द और सरल काम करने वाले होते हैं।

गोपालकाः पशुधनाः स्व पशूँस्तृषार्तान्,
प्रक्षीणतोयसरितः समुपानयन्ति।
प्रच्छायशीतलतले तटभूरुहाणाम्,
तिष्ठन्ति पीतसलिलैः पशुभिः समं ते॥ ४७॥

पशुओं को ही अपना महान धन मानने वाले ग्वाले अपने-अपने प्यासे पशुओं को गर्मी के कारण सूखे हुए कम जल वाजी नदियों के किनारे ले आते हैं और नदियों के तट पर उगे वृक्षों की गहन शीतल छाया में जल पीकर तृप्त हुए अपने-अपने पशुओं के साथ बैठते हैं और विश्राम करते हैं।

विस्मृत्य जातिकुलवर्णगतान् विभेदान्
छायासु नीलदलशोभितपादपानाम् ।
क्रीडन्ति गोपतनयाः सरितां तटान्ते,
आस्थाय चात्र समुदं स्वदनं ह्यदन्ति ॥ ४८ ॥

वे ग्रामीण ग्वालिए जाति, कुल और वर्ण के सभी भेद-भावों को भुलाकर, गहरे हरे रंग वाले पत्तों से सुशोभित वृक्षों की छाया में नदियों के किनारे पर बड़े आनन्द के साथ खेलते हैं और वहीं बैठकर अपना दोपहर का खाना खाते हैं।

ग्रीष्मात्यये सकलजीवसुखप्रदाता,
वर्षर्तुरत्र सुखदो रवितापहर्ता ।
आयाति लोकजनमानसमोदहेतुः
सम्प्राप्य तं भवति भू र्मुदिता प्रसन्ना ॥ ४९ ॥

ग्रीष्म ऋतु के बीत जाने पर समस्त प्राणियों को सुख प्रदान करने वाली, सूर्य की गर्मी को हरने वाली सभी प्रकार से सुख देने वाली संसार के जन मानस के आनन्द की हेतु वर्षा ऋतु यहां आती है जिसे प्राप्त करके सूर्य के ताप से सन्तप्त भूमि आनन्दित व प्रसन्न हो उठती है।

वर्षास्वसौ दिनकरो जलदोपगूढ़ो
नायाति लोचनपथं प्रभया विहीनः ।
कीटाः खगाश्च पशवो मनुजा वसन्ति,
खिन्ना विना दिनमणेः सदनेषु नित्यम् ॥ ५० ॥

वर्षा ऋतु में बादलों में छिपा हुआ, कान्ति हीन वह सूर्य दिखाई नहीं पड़ता। कीड़े मकौड़े, पशु-पक्षी एवं मनुष्य बिना सूर्य के परेशान हुए हर समय अपने अपने घरों में ही ठहरे रहते हैं।

नाऽऽयाति लोचनपथं दिवसे दिनेशो
रात्रौ तथा निशिकरो घनजालरुद्धः ।
भेदं निशादिवसयोररुणोदये तु
स्वोच्चैःस्वरेण कुरुते किल ताम्रचूडः ॥ ५१ ॥

वर्षा ऋतु के घिर जाने पर दिन में सूर्य के दर्शन तक नहीं होते और रात में बादलों से ढका होने के कारण चन्द्रमा दिखाई तक नहीं देता। अरुणोदय होने पर, मुर्गा अपने ऊँचे स्वर से ही रात दिन के भेद को स्पष्ट करता है।

गाढान्धकारमयदारूणदुःखपूर्णा
राका न भान्ति नितरां सुखशान्तिशून्याः।
मार्गाः पयोदजलपंकदुरूहगम्याः
पान्थाश्च दुःखमतुलं गमने सहन्ते ॥ ५२ ॥

वर्षा की प्रबलता के कारण सुख-चैन और शान्ति से शून्य, गहन, अन्धकार के कारण भयानक और दारुण दुःखों से भरी रात्रियाँ अच्छी नहीं लगतीं। मार्ग भी बादलों से बरसे जल के कारण उत्पन्न कीचड़ से भरे कठिनता से जाने योग्य हो गए हैं। यात्री लोग वर्षा के कारण कहीं आने जाने में बड़ा दुःख उठाते हैं।

ये पर्णनिर्मितगृहाः श्रमिका निरीहा
वर्षासु ते तु विवशाः सहदारपुत्राः।
वर्षाप्रसूतजलबिन्दुकणान् क्षरन्ति
दृष्ट्वा स्वपर्णसदनानि रुदन्त्यजस्रम् ॥ ५३ ॥

घास-फूस व पत्तों के घर बनाने वाले जो बेचारे श्रमिक वर्षा ऋतु में वर्षा के समय अपने बाल बच्चों सहित विवश हो जाते हैं वे वर्षा के जल की बूंदों को टपकाते हुए अपने घास-फूस के बने झोंपड़ो को देखकर आंसू बहाया करते हैं।

खं निर्मलं सुविमलं सलिलं नदीनाम्
मार्गाश्च पंकरहिताः पवनाः सुहृद्याः।
गुञ्जद्द्विरेफदलशोभितनीरजानि,
सर्वाणि चात्र शरदः परिचायकानि ॥ ५४ ॥

साफ-स्वच्छ निर्मल आकाश, नदियों का साफ सुथरा निर्मल जल, कीचड़ रहित मार्ग, अच्छी लगने वाली वायु, गुञ्जायमान भौरों के समूहों से सुशोभित कमल ये सभी इस लोक में शरद ऋतु के परिचायक हैं कि शरद ऋतु आ गई है।

वापीतडागसरितां नदनिर्झराणाम्
आसन्पुरा न विमलानि जलानि यानि।
वर्षात्यये तु सरितां च सरोवराणाम्,
भूतानि तानि सलिलान्यतिनिर्मलानि ॥ ५५ ॥

जिन बावड़ियों, तालाबों, नदियों, छोटी-छोटी नदियों व झरनों के जो जल पहले (वर्षा काल में) साफ-स्वच्छ न होकर गन्दे न पीने योग्य थे, वर्षा बीत जाने पर तो उन्हीं नदियों व सरोवरों के वे ही जल अति निर्मल हो गए हैं।

प्रातः खलु भ्रमणशीलजनाः प्रकामम्,
गन्धान्वितैः सुपवनैः परिचर्यमाणाः।
वापीतडागसरसीगतवारिजानि,
माद्यन्ति वीक्ष्य मधुपैः परिचुम्बितानि ॥ ५६ ॥

प्रातःकाल भ्रमणशील अनेक मनुष्य, शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन के द्वारा यथेच्छ सेवा किए जाते हुए, वापी, तालाब और बड़े-बड़े सरोवरों में विकसित कमलों को भौरों के द्वारा परिचुम्बन किए जाते हुए देखकर आनन्दित होते रहते हैं।

शुभ्रैन्दवी तु शरदो मृदुलं दुकूलम्
अक्षीणि मञ्जुलतमानि च पंकजानि।
काशाः कचा अलिरवः कलकण्ठरागः,
शोभा सदैव शरदः किल दर्शनीया ॥ ५७ ॥

स्वच्छ शुभ्र चांदनी तो शरद ऋतु का कोमल पतला दुकुल है और सुन्दर-सुन्दर मनोहर कमल ही उस के नेत्र हैं। भली प्रकार फूले हुए काँस ही उसके बाल हैं। भ्रमरों का गुंजार ही मानो उसके कण्ठ की मधुर ध्वनि है। इस प्रकार शरद ऋतु की यह शोभा सदा ही दर्शनीय होती है।

हेमन्तकालविपदो मनुजा विभाव्य,
पूर्वं भवन्ति सजगाः प्रतिकर्तुकामाः।
कुर्वन्ति ते तु समये विविधा व्यवस्थाः,
क्रीणन्ति तूलवसनानि च कम्बलानि ॥ ५८ ॥

हेमन्त ऋतु में होने वाली परेशानियों की सम्भावना करके श्रमिक जन पहले से ही जागरूक बने उन का प्रतिकार की कामना वाले समय से पूर्व ही तरह-तरह की व्यवस्था करने लगते हैं और वे रुई के वस्त्र (रजाई गद्दे आदि) और कम्बल आदि खरीदने लगते हैं।

वृक्षा लसन्ति विशदेन विशीर्णपत्रास्
त्वङ्मात्रमेकवसना विगतस्पृहास्ते।
विख्यापयन्ति समुदं त्वपरिग्रहत्वम्,
शंके प्रशान्तमनसो मुनयो वसन्ति ॥ ५९ ॥

पत्रविहीन, छाल मात्र रूपी वस्त्रों को धारण करने वाले, किसी भी प्रकार की स्पृहा से दूर रहने वाले वे वृक्ष विशद रूप से शोभायमान होते हैं और प्रसन्नता पूर्वक अपनी त्याग भावना का प्रदर्शन करते हैं। ऐसा लगता है मानो प्रशान्त चित्त वाले मुनि जन ही यहाँ निवास कर रहे हों।

क्षेत्राणि चेक्षुलगुडैश्चणकैर्मसूरैर्
गोधूमसर्षपयवैः परिशोभितानि ।
ग्रामश्रियं बहुतरां किल वर्धयन्ति,
चालोक्य तानि कृषकाः मुदमाप्नुवन्ति ॥ ६० ॥

ईख, चना, मसूर, गेहूँ, सरसों और जौ आदि से हरे भरे भरपूर लहलहाते खेत ग्राम के सौन्दर्य को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं। उन खेतों को देख देखकर किसान लोग प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

प्राप्ते च शीतनृपतौ शिशिरे कठोरे,
नीहारमन्दबलपौरुषतापतेजाः ।
सूर्यः प्रचण्डकिरणो गुरुशीतभीतः
चन्द्रायते गगनमध्यगतोऽपि मित्रः ॥ ६१ ॥

शिशिर ऋतु में शीत रूपी कठोर राजा के आ जाने पर, कोहरे आदि के कारण मन्द पड़े बल, पौरुष, ताप और तेज वाला प्रचण्ड किरणों वाला भयंकर शीत से डरा हुआ मध्य आकाश में पहुँचा हुआ भी सूर्य इस प्रकार चमकता है मानो चन्द्रमा ही हो।

संत्रासिताः शिशिरशीतमहाप्रकोपैर्
ये हीनसाधनजना बनितासहायाः ।
भानुं दिने हुतभुजं च महानिशायाम्,
ते प्राणरक्षणपराः पुनराश्रयन्ते ॥ ६२ ॥

शिशिर ऋतु की शीत के महाप्रकोप से सताए हुए, अपनी पत्नी व बच्चों सहित साधनहीन जो निर्धन श्रमिक जन हैं वे दिन में सूर्य का तथा रात में अग्नि का सहारा लेते हुए अपने प्राणों की रक्षा करने में लगे रहते हैं।

ये चौर्णवस्त्ररहिता हिमकोपखिन्नाः,
कार्पासतन्तुवसनावृत्तसर्वगात्राः ।
ते निर्धनाः श्रमकरा नितरां निरीहा,
जाने न शीतसमयं गमयन्ति केन ॥ ६३ ॥

और जो बेचारे ऊनी वस्त्रों के बिना, ठण्ड के प्रकोप के कारण दुःखी हुए, सूती कपड़ों से ही सारे शरीर को ढके हुए होते हैं वे बेचारे निरीह निर्धन मजदूर ने जाने अपने शीतकाल को (जाड़े) किस प्रकार बिताते हैं ?

ये नाममात्रवसनानि च धारयन्तः
स्वस्थास्तथा श्रमपरा निजदैवतुष्टाः।
कष्टप्रदे च कठिने हिमशीतभागे
ते तत्र नग्नचरणा विवशा अटन्ति ॥ ६४ ॥

और जो बेचारे अपने अंगों को ढकने के लिए केवल नाम मात्र को ही कपड़े (फटे पुराने चिथड़े) पहने रहते हैं, स्वस्थ और परिश्रम करने में मस्त रहते हुए अपने भाग्य पर सन्तुष्ट रहते हैं वे निरीह बर्फ से ठण्डे, शीतल कष्ट प्रद कठिन (बर्फ जमे) भाग पर भी विवश बने नंगे पैर ही घूमते रहते हैं।

सत्यं वदन्ति नितरामनलीकवाचो
'यच्चास्ति तेन लिखितं विधिना ललाटे।
तन्मार्जितुं न सबलो क्षमतेऽत्र कोऽपि।
भुङ्क्ते सदैव मनुजो निजकर्मपाकम् ॥६५ ॥

कभी भी असत्य न बोलने वाले सत्पुरूष यह सत्य ही कहते हैं कि जो कुछ भी उस विधाता ने हमारे भाग्य में लिख दिया है उसे मिटाने में कोई भी बलवान से बलवान व्यक्ति समर्थ नहीं है। मनुष्य तो सदा ही अपने किए कर्मों को फल भोगता है।

ये भारवाहतनयाः सहदारपुत्रा
नित्यं महाधनवतां च कृषीबलानाम्।
कार्यं गृहेषु कृषिकर्मफलेषु चैव
कुर्वन्ति ते तु विवशा न निजेच्छया हि ॥ ६६ ॥

जो श्रमिक तथा श्रमिक पुत्र अपने पूरे परिवार सहित धनवानों और किसानों के घरों में व खेत खलिहानों में नित्य ही श्रम के कार्य किया करते हैं वे बेचारे विवश होकर ही करते हैं न कि स्वेच्छा से।

ग्रामे प्रभातसमये दधिमन्थनाय
निक्षिप्य मन्थलगुडं दधिभाण्डकेषु।
गायन्ति यानि ललना मृदुगीतकानि,
दृश्यानि तानि सुखदानि सदा सृजन्ति ॥ ६७ ॥

गांव में प्रभात काल होने पर दही बिलौने के लिए, मथानियों में रही रखकर गांव की ललनाएं जिन मधुर गीतों को गाती हैं वे गीत बड़े ही सुन्दर और सुखद दृश्य उपस्थित करते हैं।

सुप्तोत्थिताः सुललनास्तु कृषीबलानाम्
धेनू र्दुहन्ति मधुराणि पयांसि यानि।
पीत्वा पयांसि कृषकाः ससुताश्च तानि,
स्वस्था भवन्ति विपुलं बलमाप्नुवन्ति ॥ ६८ ॥

गांव में किसानों की सोकर उठने वाली ललनाएँ, गायों का जो मधुर दूध दुहती हैं उस दूध को अपने बाल बच्चों सहित पीकर वे हृष्ट पुष्ट व स्वस्थ होते हैं तथा अपार बल प्राप्त करते हैं।

प्रातः दिनान्तसमये ललना जलार्थम्,
आदाय यान्ति सततं कलशाङ्घटाँश्च।
कूपानुपेत्य समुदं च समालपन्ति,
पूर्णाञ्जलैः स्व कलशान् गृहमानयन्ति ॥ ६९ ॥

सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय ग्रामीण युवतियाँ अपने अपने घड़े व कलश लेकर जल लेने के लिए पनघटों पर जाया करती हैं और कुओं पर पहुँच कर बड़ी प्रसन्नता के साथ एक दूसरी से बतियाया करती हैं। वे सभी जलों से भरे अपने अपने घड़े व कलशों को लेकर अपने-अपने घर पहुँच जाती है।

लिम्पन्ति काश्चिदपरा गृहकर्मदक्षा
गव्यैर्जलैश्च मुदिता गृहभूतलानि।
प्रक्षालयन्ति वसनानि च पात्रजातम्,
काश्चित्पचन्ति सदयं मृदु भक्षणीयम् ॥ ७० ॥

गृह कार्यों में दक्ष कुछ ग्रामीण स्त्रियाँ गोबर और जल से अपने घरों के आँगनों को, प्रसन्नता अनुभव करती हुई लीपा करती हैं। कुछ अपने तथा परिवार वालों के गन्दे कपड़ों के धोने में लगती हैं तो कुछ बर्तनों के मांजने धोने में व्यस्त हो जाती हैं और कुछ स्त्रियाँ प्रातःकाल का नाश्ता तैयार करने में जुट जाती हैं।

शुद्धं घृतं सुबलदं सघनं च तक्रम्,
पूतं पयः सुमधुरं दधि पौष्टिकं च।
आस्वादयन्ति धनिकास्तु त एव येषाम्,
गावो भवन्ति भवनेषु महाघटोघ्न्यः ॥ ७१ ॥

बल प्रदान करने वाले शुद्ध घी, गाढ़ी ताजी तक्र (छाछ) पवित्र दूध और मधुर पौष्टिक दही का स्वाद वे ही धनिक लोग चखते हैं जिनके घरों में बड़े-बड़े बाँक वाली दुधारू गायें हुआ करती हैं।

प्रातः कृषीबलसुता धृतकीचकांशा
बद्ध्वा निजांचलपुटे स्वदनं यथेष्टम्।
सार्धं स्वमित्रनिवहै र्मधुरं हसन्तो।
निष्कासयन्ति नगरान्निजगोसमूहान्॥ ७२॥

प्रातःकाल होते ही, हाथों में बांस की लाठियाँ लिए हुए और अपने अपने वस्त्र में अपना यथेच्छ खाना बांधकर, किसानों के गोप बालक अपनी मित्रमण्डली के साथ हास परिहास करते हुए अपने नगर से अपने अपने गोसमूहों को निकाला करते हैं।

गोकण्ठबद्धघटिकामधुरस्वरेण,
गोपादधूतगुरुधूलिचयैः प्रगाढैः।
आशा धराञ्च गगनं किल पूरयन्त
आयान्ति गोपतनयाः स्वपुरं दिनान्ते॥ ७३॥

गायों के कण्ठ में बंधी हुई घण्टियों के मधुर स्वर से और गायों के चरणों से उठी पवित्र रज के भारी समूहों से सभी दिशाओं, भूमि और आकाश को भरते हुए ग्वालिए सांयकाल होने पर अपने नगर (गाँव) को लौटने लगते हैं।

आयान्तिये श्रमकरा निजवृत्तिहतोर्
ग्रामात्प्रभातसमये नगरं विशिष्टम्।
आगत्य ते श्रमकरा खलु चत्वरस्था
वृत्तिं प्रतीक्षणरताःसमयं नयन्ति॥७४॥

जो श्रमिक अपनी रोजी के लिए किसी विशेष नगर में प्रातः काल ही अपने अपने गाँव से आते हैं वे सभी मजदुर शहर में आकर किसी विशेष चौराहे पर एकत्र होते हैं और अपनी मजदूरी लग जाने की प्रतीक्षा में ही अपना सारा दिन बिता देते हैं।

केचित्तु तत्र ससुखं भृतिकां लभन्ते,
केचिच्च भाग्यहतका निजवृत्तिहीनाः।
लब्धं श्रमप्रतिफलं निजवस्त्रबद्धा
खिन्नाः प्रसन्नवदना अभियान्ति गेहम्॥७५॥

मजदूरी लग जाने की प्रतीक्षा में चौराहे पर बैठे मजदूरों में से कुछ तो आसानी से ही काम प्राप्त कर लेते हैं जबकि कुछ बेचारे, भाग्य के मारे बिना काम मिले ठाली ही रह जाते हैं। अपनी-अपनी मजदूरी के पैसों को अपने वस्त्र में बाँधे हुए, कुछ उदास मुख और कुछ प्रसन्न मुख अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं।

ये भारवाहकजना भृतिमालभन्ते,
ते वासरान्तसमये कुलपोषणाय ।
क्रीत्वा ततस्तु लवणं द्विदलं च चूर्णम्
गेहं स्वकं तु समुदं प्रतियान्ति तीव्रम् ॥७६ ॥

जो मजदूर अपनी मजदूरी के पैसे प्राप्त कर लेते हैं, वे सायं काल अपने घर को लौटते समय अपने परिवार के भरण पोषण के लिए शहर से ही नमक मिर्च, दाल आटा आदि खरीद कर अपने घर की ओर प्रसन्न होते हुए तेजी से लौटते हैं ।

ये चैव भाग्यहतका विवशा वराका,
भृत्या विहीनगतिका धनहीनखिन्नाः ।
राकामुखे शिथिलदेहधरा हताशा
गेहं प्रयान्ति सततं निजभाग्यतुष्टाः ॥७७ ॥

और जो बेचारे, भाग्य के मारे विवश रोजी (मजदूरी) न मिल पाने के कारण, धनहीन और खिन्न होते हैं वे बेचारे सायंकाल होने पर, थके माँदे शरीर वाले हताश हुए, अपने भाग्य पर भरोसा करके सन्तुष्ट रहने वाले (मजदूर) अपने घर को लौट जाते हैं ।

आजीविकां लघुतरामपि लब्धुकामा
व्यर्थं भ्रमन्ति खलु संस्तुतिपत्रहस्ताः ।
अप्राप्य ते तु सुखदं निजदैनिकान्नम्,
विध्वंसवृत्तिनिरताः सुजानान् शृणन्ति ॥७८ ॥

छोटी से छोटी भी मजदूरी (नौकरी) पाने की कामना करने वाले अनेक सिपारसी पत्रों को हाथ में लिए हुए, सक्षम व्यक्ति भी बेकार ही इधर-उधर भटकते फिरते हैं । वे अपनी उचित रोजी रोटी का साधन प्राप्त न करके, विध्वंसक स्वभाव वाले वन कर समाज के भले व्यक्तियों को सताया करते हैं ।

केचिद् विशालनगरस्थमहागृहेषु
कर्तुं सदैव कठिनं श्रमसाध्यकार्यम् ।
आयान्ति यान्ति सततं क्रमशोह्यनेके,
केचित्तु तत्र दिवसे ह्यपरे रजन्याम् ॥७९ ॥

कुछ मजदुर तो बड़े-बड़े नगरों में स्थित बड़े-बड़े कारखानों में श्रम साध्य कठिन कार्य करने के लिए सदा ही बारी-बारी से निरन्तर आया जाया करते हैं । उन कारखानों में कुछ श्रमिक तो दिन में आते हैं और कुछ रात में आते हैं ।

केचिन्महानगरमध्यगतस्थलेषु,
'झुग्गी' ति लोककथितं प्रसभं समेत्य।
निर्माय तत्र सहदारसुता निरीहा
आवास दौःख्यमतुलं विवशा भजन्ते ॥८० ॥

बहुत से कुछ बेचारे मजदूर तो महानगरों के मध्य खाली पड़े स्थानों पर मिलकर, बलपूर्वक, 'झुग्गी' नाम से लोक प्रसिद्ध रहने के स्थान बनाकर, अपने बाल बच्चों सहित, लाचार बने निवास के दुःख सहते रहते हैं।

ये निर्धनाः सकलसाधनवृत्तिहीनाः
सन्तानभारनमिता जरसाभिभूताः।
भूत्वाऽपि नित्यमपि ये मदिरां पिबन्ति,
जानन्ति ते न सुखमत्र तु दुःखमेकम् ॥८१ ॥

आजीविका के सभी साधन और रोजी हीन, सन्तान के बोझ से दबे हुए, वृद्धावस्था में पहुँचे हुए, धनहीन होते हुए भी जो मजदूर रोजाना शराब पीते हैं वे जीवन के सुख को तो कभी जान ही नहीं पाते वे तो सदा दुःख ही दुःख उठाते रहते हैं।

ये मांसलाः श्रमकरा घटितांगयुक्ताः
दोषैश्च दुर्गुणगणै र्व्यसनै र्विहीनाः।
रात्रिंदिवं च कठिनं श्रममाचरन्ति
सन्मित्रजीवनसुखानि तु ते लभन्ते ॥८२ ॥

जो श्रमिक हृष्ट पुष्ट, सुगठित अंगों वाले, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों एवं बुराइयों से दूर, रहते हुए, रातदिन कठिन परिश्रम करते हैं, वे ही श्रमिक अच्छेमित्र, और जीवन के सच्चे सुखों को प्राप्त करते हैं।

शीतातपं सुखहरं कठिनं महोग्रम्,
सोढ्वापि ये न विमुखा प्रभवन्ति योगात्।
उत्साहभावभरिता निजकर्मनिष्ठा
आस्वादयन्ति किल ते श्रममिष्टपाकम् ॥८३ ॥

जो श्रमिक जीवन के सुखों के हरने वाले कठिन, भयंकर जाड़े और गर्मी को सहकर भी अपने कर्त्तव्य मार्ग से विमुख नहीं होते, सदा ही उत्साह से भरे रहते हैं तथा अपने कर्म के प्रति निष्ठावान बने रहते हैं वे ही अपने परिश्रम के मीठे फल का स्वाद चखने में समर्थ होते हैं।

जिघ्रन्ति ताँश्छ्रमकरान्न विपद्भुजंगाः
ये सन्ति सद्गुणधनाः स्वनियोगनिष्ठाः ।
दूरात्त्यजन्ति सततं व्यसनानि चैव,
मार्गं सरन्ति सरलं सुजनैरभीष्टम् ॥८४ ॥

परिश्रम करके जीविका चलाने वाले उन मजदूरों को विपत्ति रूपी सर्प कभी नहीं डस पाते जो सद्गुणों के धनी व अपने कार्य के प्रति निष्ठा रखने वाले होते हैं और दुर्व्यसनों तथा बुरी आदतों को दूर से त्यागकर सत्पुरुषों के द्वारा अभीष्ट सरल मार्ग पर ही आगे बढ़ते हैं ।

कृत्वा सदैव कठिनं श्रमसाध्यकर्म,
ये चार्जयन्ति विभवं बहु चाऽपि चाल्पम् ।
सर्वं समर्प्य मदिरालयपानगोष्ठ्याम्,
आयान्ति ते स्व सदनाभिमुखाः प्रमत्ताः ॥८५ ॥

बहुत से मजदूर तो परिश्रम से सिद्ध होने वाले कठिन कार्यों को पूरा करके जो थोड़ा बहुत धन कमाते हैं उसे वे मदिरालयों में जाकर अथवा शराब की महफिलों में जाकर सब कुछ भेंट चढ़ाकर, नशे में धुत्त, अपने घरों की ओर लौटते है ।

वामे करे तु चषकं ह्यपरे च कूपीम्,
धृत्वा सदैव सदनं प्रतियाति शौण्डः ।
भार्यां सुतानपरपोष्यजनान् गृहस्थान्
आगत्य तत्र खलु ताडयति प्रमत्तः ॥८६ ॥

शराबी बांए हाथ में प्याला और दूसरे हाथ में बोतल लेकर ही अपने घर में घुसता है और घर में घुसते ही वह शराबी अपनी पत्नी, पुत्रों एवं अन्य पोष्यजनों को मारता पीटता है ।

गच्छन्ति केचिदपरे मधुपानमत्ताः
छायागृहं प्रतिदिनं मदनार्तचित्ताः ।
स्वोपार्जितञ्च सकलं निजदैनिकान्नम्,
लुम्पन्ति भाग्यहतका समुपेक्ष्य पाल्यान् ॥८७ ॥

शराब के नशे में चूर हुए कुछ दूसरे मजदूर, कामुकता के रस में डूबे चित्त वाले प्रतिदिन सिनेमा घरों में चित्र देखने अवश्य ही जाते हैं और दुर्भाग्य के मारे वे शराबी मजदूर अपने आश्रित रहने वाले परिवार के सदस्यों की उपेक्षा करके अपने सारे दिन की कमाई को नष्ट करते रहते हैं ।

लोके वदन्ति मनुजा बहुशः सदेत्थम्,
उद्घोषयन्ति सततं च महोच्चकण्ठैः।
'लोके सदा श्रमकरा धनिकैः समर्थैः
संशोषिता वहुविधैर्न तु शोषणीयाः ॥८८ ॥

इस संसार में बहुत से मनुष्य तो सदा यही कहते रहते हैं और बड़े ऊंचे स्वर में घोषणा करते हैं कि इस जगत में धनवान और शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा सदा ही अनेक प्रकार से मजदूरों का शोषण किया जाता रहा है, उनका शोषण नहीं होना चाहिए

मन्ये पुरा श्रमकरा धनशक्तिवृद्धैः,
प्रज्ञाधनैः कुटिलधूर्ततमैः सशक्तैः।
आसन् कृता बहुविधैः सुखवंचितास्तैस्
ते जज्ञिरे न विवशाः तु किमात्मवश्यम् ॥८९ ॥

मैं यह मानता हूँ कि पहले कभी चतुर चालाक, कुटिल, धूर्त धन और शक्ति से सम्पन्न, समर्थ धनी व्यक्तियों के द्वारा, परिश्रम शील मजदूर तरह-तरह से सुख सुविधाओं से वचित रखे जाते थे, वे बेचारे विवश मजदूर यह भी नहीं जानते थे कि स्वतंत्रता अथवा अपनी इच्छानुसार कोई कार्य करना क्या होता है।

रात्रिंदिवं श्रमकराः सरलस्वभावा
भार्यासुतातनयपुत्रवधूसहायाः।
स्व स्वामिनश्च वचनान्यनुपालयन्तो
निर्व्याजभावभरिताः समयं व्यतीयुः ॥९० ॥

छल-प्रपंच से दूर, सरल स्वभाव वाले, पत्नी, पुत्री पुत्र और पुत्र वधू को भी अपने साथ काम में लगाए रहने वाले अपने स्वामी के वचनों का पालन करते हुए, परिश्रमशील मजदूर रात दिन काम में जूटे रहकर अपना समय काटते थे।

कश्चिद् यदा श्रमकरो विविधै र्निमित्तैर्
रोगैश्च दुर्गुणगणैरथवा स्वदोषैः।
नैर्धन्यमेति विवशः श्रमिकस्तदासौ,
न्यासीकरोति गृहजीवनसाधनानि ॥९१ ॥

जब कोई श्रमिक, अनेक प्रकार के कारणों से, रोगों से, अनेक दुर्गणों से अथवा अपने ही अवगुणों के कारण निर्धन बन जाता है तो वह विवश मजदूर अपने गृहस्थ के जीवन को चलाने वाले अनेक सुख साधनों को गिरवी रख देता है।

दारिद्र्यदुःखनिहतोऽपि बहुप्रजश्च,
दुग्धं घृतं च दधिपायसमन्नमिष्टम्।
सौख्यप्रदानि भवनानि मनोहराणि,
पश्येदसौ तु सकलानि सदैव सुप्तः ॥९२॥

गरीबी के दुःख से पीड़ित होते हुए भी बहुत सन्तान वाला, दुःखी मजदूर, दूध, घी, दही, खीर और अभीष्ट भोजन सुख सुविधाओं से सम्पन्न, मनोहर भवन आदि सभी पदार्थों को सुख पूर्वक सोता हुआ स्पप्न में ही देख पाता है१

काचिद् यदा श्रमिकपुत्रबधूः प्रसूता,
आहारमत्र सुखपोषणदं न चाप्त्वा।
भग्नोद्यमा स्वतनयं ह्यवलोक्य नव्यम्,
प्राणाञ्जहाति विवशा करुणार्द्रनेत्रा ॥९३॥

जब कभी किसी श्रमिक के पुत्र की प्रसूता कोई नव वधू पुत्र को जन्म देने के बाद सुख प्रद पौष्टिक आहार भी प्राप्त न करके, सभी प्रकार से निराश और अशक्त हुई अपने नव जात पुत्र को देख-देख कर, विवश हुई, करुणा के आंसूओं से भरे नेत्रों वाली अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देती है।

पुत्राननं सुमृदुलं नवनीततुल्यम्,
आलोक्य तत्र जननी श्रमजीविजाया।
संभाव्य तस्य तनयस्य च भाग्यधेयम्,
रोदित्यसावतितरां यमगेहगंत्री ॥९४॥

मजदूरी पर ही अपनी जीवन यापन करने वाले श्रमिक की, पुत्र को जन्म देने वाली, यमलोक की यात्रा करने के लिए तत्पर पत्नी ने ताजे मक्खन के समान सुकोमल, पुत्र के मुख को देखकर और अपने उस पुत्र के भावी भाग्य की सम्भावना करके निरन्तर रोती ही रहती है।

हा! हा! सुपुत्र! कथमत्र समागतस्त्वम्?
नास्त्यत्र कोऽपि गुणविन्निजलाभनिष्ठाः।
संदृश्य निर्धनजनं तु तथा गिरन्ति,
मत्स्यान् सुधीवरवरा सततं यथैव ॥९५॥

अरे मेरे बेटे! तू इस मजदूर के यहाँ क्यों आ गया? आज कल इस स्वार्थी संसार में कोई भी गुणज्ञ नहीं है सभी अपने-अपने स्वार्थ साधन में लिप्त हैं। आज के सामाजिक स्वार्थी धनी व्यक्ति तो निर्धन व्यक्तियों को, विशेषकर मजदूरों को, इस प्रकार निगलने का प्रयत्न करते हैं जिस प्रकार मछली पकड़ने वाले धीवर मछलियों को फँसाने का सदा ही प्रयत्न किया करते हैं।

जातस्त्वमत्र सुत! मे श्रमिकस्य गेहे
अत्रस्थ एव किल यास्यसि शैशवं त्वम्।
अत्रैव पुत्र नवयौवनमप्यमूल्यम्
प्रक्षीणतामुपगमिष्यति निर्धनत्वे ॥९६ ॥

हे मेरे लाल ! तू एक मजदूर के घर में पैदा हुआ है। मजदूर के यहां रहते हुए ही तू अपने बचपन में पदार्पण करेगा और यही पर हे बेटे ! तेरी अमूल्य, भरी जवानी भी धीरे-धीरे समाप्त होती चली जायेगी।

वृद्धत्वमेष्यसि ततस्त्वृणदोषखिन्नो
नैर्धन्यभारनतमस्तकदैन्यतप्तः।
स्वाजीविकार्जनरतो ननु दासतुल्यो
मृत्युं समेष्यसि ततः श्रमिको हि भूत्वा ॥९७ ॥

हे मेरे लाल। निर्धनता के कारण कर्ज के बोझ से दबा हुआ तू फिर बुढापे की ओर बढ़ने लगेगा और कर्ज के भार से सिर नीचा किए हुए, दीन बना, अपनी रोजी रोटी के चककर में पड़ा हुआ एक दास के समान जीवन बिताता हुआ तू एक मजूदर बना हुआ ही मृत्यु का ग्रास बन जाएगा।

इत्थं विचाररथमध्यविराजमाना
रोगातुरा प्रसवभूतविपद्विमूढा।
ज्ञातं न सा गतवती तु कदा कृतान्तम्,
आसीत्ररोदितुमपि स्वजनो न तस्याः ॥९८ ॥

इस प्रकार विचारों के रथ पर सवार हुई, रोग से आक्रान्त प्रसव पीड़ा की विपत्ति से सुध-बुध विसराई हुई, वह मजदूर प्रसूता युवती, न जाने कब यमलोक सिधार गई। उस समय उसको रोने के लिए उसके पास उसका कोई परिवारी जन भी नहीं था।

लोके सखे! यदवलोक्यत एव तत्तु
भव्यं विशालमथवा रमणीयवस्तु।
सर्वं हि तच्छ्रमिकदेहपरिश्रमोत्थम्,
नो चेत्तु सर्गमखिलं कथमत्र रम्यम् ॥९९ ॥

हे मित्र। इस जगत में जो कुछ भी भव्य, विशाल अथवा रमणीय दिखाई देता है वह सब निश्चय ही श्रमिक के शरीर से निकले परिश्रम का प्रतिफल है। यदि ऐसा न होता तो यह सम्पूर्ण जगत इतना सुन्दर कभी भी न बन पाता।

वन्द्या इमे श्रमसुता न कदापि हेया,
हेयास्तु सन्ति नियतं धनिकास्त एव।
ये भुञ्जते प्रतिफलं श्रमपुत्रकाणाम्,
जीवन्ति ये च नितरां परपिण्डतुष्टाः ॥१०० ॥

हे सखे। सदा परिश्रम करके जीविका चलाने वाले ये मजदूर वन्दना (सम्मान) करने योग्य हैं घृणा किए जाने योग्य नहीं। घृणा किए जाने योग्य तो वे ही धनिक व्यक्ति हैं जो मजदूरों की मेहनत की कमाई को डकार जाते हैं और दूसरों का हक मारकर स्वयं मौज मस्ती करते हैं।

ये केऽपि सन्ति मनुजा भुवि जायमानाः
सर्वे तु ते भगवतस्तनयाः समानाः।
कोप्यत्र कस्य जगति प्रतिपालको न
चैको भुनक्ति सकलान् प्रभुरेव जीवान् ॥१०१ ॥

हे मित्र। इस भूमि पर पैदा होने वाले जो कोई भी मनुष्य हैं वे सभी भगवान के पुत्र हैं और सभी समान हैं। इस भूतल पर कोई किसी का भी पालन करने वाला नहीं है। केवल एक प्रभु ही सभी जीवों का पालन करता हैं।

ये चात्र सन्ति मनुजाः सरलस्वभावाः,
सन्तीह ते तु नियतं श्रमदेवनिष्ठाः।
ये स्वार्थसाधनरताः कुटिलस्वभावाः
सर्वास्त एव सरलान्मुजाँस्तुदन्ते ॥१०२ ॥

हे मित्र ! इस संसार में जो मनुष्य सीधे-साधे और छल कपट से रहित हैं वे ही बेचारे परिश्रम में निष्ठा रखने वाले मजदूरी करके जीविका चलाने वाले मजदूर हैं। जो स्वभाव से ही छल कपट का व्यवहार करने वाले, और अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे रहते हैं वे ही सुन्दर सरल स्वभाव वाले, भोले भाते मनुष्यों को सदा ही दुःख दिया करते हैं।

येषां श्रमेण सकलं जगदस्ति रम्यम्
येषां बलेन मनुजाः सुखमाप्नुवन्ति।
येषां बलेन वसुधा वसुधा सदैव,
तेषां गुणान् कथय को वदितुं समर्थः ॥१०३ ॥

जिन श्रम पुत्रों के परिश्रम से यह सारा जगत सुख प्राप्त कर रहा है, जिनके बल से यह वसुधा (भूमि) सदैव वसुओं को धारण किए रहती है, भला, उन श्रमशील मजदूरों के गुणों का कौन वखान कर सकता है ?